पाँच उपन्यासिकाएँ
पाँच लेखिकाएँ

पारिजात प्रकाशन, पटना-१

अनुत्तरित बिंदु सिन्हा

सारी रात हवा शांता सिन्हा

सहयात्री

उषाकिरण खान

अजनबी सा अलका शुक्ल

आँख में बहते आशा मिश्र

बिन्दु सिन्हा, शान्ता सिन्हा, उषाकिरण खान,
ऋता शुक्ल, शुभदा मिश्र

प्रकाशक पारिजात प्रकाशन, डाकबंगला रोड, पटना-1
प्रथम संस्करण 1982
आवरण [illegible]
मूल्य चौबीस रुपये (24.00)
मुद्रक भगवती प्रिंटर्स मेन रोड गांधीनगर, दिल्ली 31

Five Novels in One by Five Eminent Women Writers
Rs 24.00

अनुत्तरित/बिन्दु सिन्हा

उनके होंठ कांपे, धीरे धीरे उनकी गर्दन भी हिलने लगी। मेरा हाथ खींच कर उन्होंने सीने पर रख लिया और आँखें बंद कर जैसे अपने-आप से कहने लगी, "मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं, जिन्होंने मुझे छला, उनसे भी नहीं, क्योंकि उनके छल को मैंने अपनी नियति माना। अपनी नियति साथ लेकर जा रही हूँ और किसी का कुछ देना पावना नहीं है मेरे ऊपर सब कुछ चुकता कर दिया।"

☐ बिन्दु सिन्हा

अनुत्तरित

तुम्हारा नाम नहीं लूंगी। तुम्हारी पार्थिव सत्ता अब मेरे लिए अनाम-अगोचर बन चुकी है। वैसे ही जैसे किसी अपूर्व कलाकृति को कोई नाम न दे सके, मैं तुम्हें कोई नाम देने में असमर्थ हूँ।

कभी तुम्हारे नाम में फागुन की अकुलाहट थी रेशम की सरसराहट थी, चन्दन की गमगमाहट थी, लेकिन अब तो कुछ भी शेष नहीं बचा, जो है वह बर्फ की सफेदी मात्र। बर्फ की ठंडी चादर के नीचे हमारे जज्बात कब के दफन हो चुके।

अब तो हमारे शब्दों के अर्थ भी चुक गए। कभी हमारे पास शब्द थे ही नहीं सिर्फ अर्थ ही अर्थ थे। तुम दो शब्द कहते, मैं बहुत कुछ समझ लेती, तुम दो शब्द लिखते, मैं बहुत कुछ पढ़ लेती।

तुम्हारा वह पहला खत आज भी मेरे पास सुरक्षित है। तुमने झिझकते हुए सिर्फ दो सतरें लिखी थीं—"आज दो बजे कामन रूम में आपकी प्रतीक्षा करूंगा। आयेंगी तो ?"

लगा यह तुम्हारा आग्रह नहीं आदेश है, आदेश जो मुझे पालना ही होगा, 'ना' नहीं कह सकती। अचानक ही तुम्हारे पत्र का हर अक्षर उड़ने लगा। सफेद बगुलों के से पंख फड़फड़ाते ढेर सारे अक्षर उड़ उड़ कर मेरे कानों से टकराने लगे—'आयेंगी तो ?' हाँ मुझे जाना ही होगा, जरूर जाऊँगी। तुमने बुलाया जो है।

मैं तुम्हारे पत्र को बार बार पढ़ती रही कभी दिन के उजाले में, कभी रात के अंधेरे में। हाँ, रात के अंधेरे में भी मैं तुम्हारे पत्र को बखूबी पढ़ सकती थी। पत्र का हर अक्षर मेरी जेहन पर तसवीर की तरह उतर गया था— प्रतीक्षा करूंगा, आयेंगी तो ?'

तुम मेरी प्रतीक्षा करोगे ! भला इससे बढ़ कर मेरा और सौभाग्य क्या हो सकता है ? तुम यूनिवर्सिटी के जनरल सेक्रेटरी थे । लड़कियां तुम्हारे रुतबे से डरती थीं । तुम से बात करने को लालायित रहती थीं पर तुम थे कि किसी की ओर कभी नजर उठा कर देखते भी नहीं ।

तुमने मुझे पत्र लिख कर बुलाया है, सचमुच मुझे विश्वास नहीं हो रहा था । कहीं किसी ने मजाक तो नहीं किया । उन दिनों ऐसे मजाक खूब चला करते थे—किसी लड़के की ओर से किसी लड़की को पत्र लिख देना । मिलने का समय और स्थान भी लिख देना । लड़की बेचारी सहमती, सकुचाती नियत स्थान पर पहुंचती तो वहां लड़कियों का झुंड पहले से ही उपस्थित रहता, मजाक बनाने के लिए ।

कहीं किसी ने मेरा मजाक बनाने के लिए तो ऐसा नहीं लिख दिया । बार बार मैं पत्र पढ़ती । तुम्हारा हस्ताक्षर मैं पहचानती नहीं थी, फिर भी तुमसे मिलने का काल्पनिक मोह मैं अपने को रोक न सकी । दूसरे दिन अनजाने ही मेरे पांव कामन रूम की ओर बढ़ गए । तुम बेसब्री से मेरा इंतजार कर रहे थे । तुम पर नजर पड़ते ही मेरी कनपटियां झनझना उठीं । खुशी से, गर्व से, पुलक से मैं विभोर हो उठी । सारी देह भारहीन हो कर जैसे हवा में उड़ने लगी

मुझे देखते ही तुम उत्साह में भर कर बोल पड़े, "मुझे उम्मीद थी आप जरूर आयेंगी अगर अभी नहीं आती तो शाम को मैं खुद ही आपके होस्टल में आता ।"

"ऐसी भी क्या जरूरत आ पड़ी है ?" मैंने दीवाल से सट कर दम लेते हुए पूछा । दरअसल जल्दी जल्दी सीढ़ियां चढ़ने के कारण मैं बुरी तरह हांफने लगी थी ।

"आइये न बैठ कर बातें करें यहां बैठेंगी या कैंटीन में ?"

"आप जहां भी पसंद करें ।"

"चलिए कैंटीन में ही चलते हैं अभी वहां भीड़ नहीं होगी यहां तो बहुत लोग हैं ।"

तुम्हारे साथ सीढ़ियाँ उतरते मेरा रोम-रोम किसी अप्रत्याशित आनन्द की पुलक से सिहर उठा। लगा, छोटी-सी मुट्ठी में पल भर को अपरिसीम आकाश समा गया है।

तुमने चाय के साथ गरम समोसे भी मंगा लिए। "हाँ तो नीरू जी, मैंने आपको एक बहुत जरूरी काम से बुलाया है। आप अगले महीने लखनऊ चल सकेंगी?"

"किसलिए?"

"इंटर यूनिवर्सिटी डिबेट है, आपको मालूम नहीं?"

"ओ हाँ" मुझे अपनी जानकारी पर शर्म हो आई। इतनी जानकारी मुझे होनी ही चाहिए थी।

"आप बहुत अच्छा बोलती हैं, पिछले सेमिनार में आपको बोलते हुए सुना था। चलेंगी तो अच्छा रहेगा।"

"मैं भला वहाँ क्या बोलूंगी?"

"यह यूनिवर्सिटी की प्रतिष्ठा का सवाल है नीरू जी, आपको चलना ही होगा। आप अपने गार्जियन से पत्र लिख कर अनुमति ले लें। आपको वहाँ कोई परेशानी नहीं होगी। प्रोफेसर कृष्णकांत अपनी पत्नी के साथ जा रहे हैं। आपके ठहरने का प्रबंध भी उनके साथ ही हो जायेगा। आपको कोई तकलीफ नहीं होगी।"

मैं कैंटीन की मेज पर लगे चमकते काले पत्थर को देखती रही बोली कुछ नहीं। तुमने उठते हुए कहा, "तो बात पक्की रही। आप आज ही घर पर पत्र लिख दें।"

बचपन से ही मुझे लगता कि मेरे आसपास हमेशा सड़न की, विनाश की एक धूसर दुर्गंधमय लपट छाई रहती है लेकिन उस दिन तुमसे मिलने के बाद अचानक लगा। वह सब मेरा वहम मात्र था। मेरे इर्द गिर्द सड़न की दुर्गंध नहीं, फूलों की घाटी का सौंदर्य बिखरा पड़ा था। लाल नीले पीले फूल रंगों की दुनिया से वह मेरा प्रथम साक्षात्कार था।

मैं रात भर सो न सकी। किसी के साथ इस सीमा तक घुल मिल कर बातें करने का मेरे जीवन का यह पहला अनुभव था, हमारे बीच की दूरी कब परिचय से अतरगता में बदल गई, पता नहीं चला।

पता चलता भी कैसे ? अतरगता के वे क्षण तो काल सीमा से परे थे। तुम्हारे व्यक्तित्व में उद्दाम लहरों का आमत्रण था। मैं अनजाने ही खिचती गई, यह सोचे बिना कि आगे गहरी धारा भी हो सकती है, डूबने का भय भी हो सकता है।

उस रात नींद मेरी पलकों से दूर दूर ही रही। करवटें बदलते-बदलते सुबह के मद्धिम आलोक में, सहसा एक धीर ललित व्यक्तित्व मेरी अतश्चेतना के साथ एकाकार हो उठा। मेरे होठ काँप उठे, धीरे धीरे जैसे वीणा के तारों पर कोई स्वर झकृत हुआ हो स्वप्न पुरुष पुरुष आकाश में लाली छान लगी थी। उस रक्तिम आभा के साथ ही स्वप्नपुरुष की वह आकृति भी रक्ताभ हो उठी। मैं स्वय भी तो लाली में सराबोर हो उठी थी। लाली मेरे लाल की

मैंने निश्चय कर लिया, लखनऊ जरूर जाऊगी।



लखनऊ विश्वविद्यालय के परिसर में मैं जब अपना भाषण समाप्त कर मच से उतरी तुम आह्लादित से मेरी ओर बढ़ आये, 'रिमली आपकी स्पीच बहुत अच्छी रही आय एम वेरी मच इम्प्रेस्ड।"

मुझे पारितोषिक भी मिला लेकिन तुम्हारी प्रशसा उस पारितोषिक से कहीं बड़ी थी।

फिर तो हम हमेशा मिलने लगे। भीड़ भरी सड़कों पर साथ साथ चलते तुम बड़े अजीब से सवाल किया करते, "तुम्हें यह रोशनी पसन्द है नीरू ? तुम तो जरूर 'हाँ' कहोगी। तुम लोग चमक दमक पसन्द करती हो न ! '

कभी कहते, ' शायद तुम्हें अधेरा पसन्द हो तुम लोग स्वभाव से ही रहस्यमयी होती हो न !"

कभी होस्टल से बाहर निकलते ही तुम कोई खाली रिक्शा तलाश लेते, "चलो, कहीं एकांत में चलते हैं।"

तुम्हारा सामीप्य ही मुझे मदहोश बना देने के लिए काफी था। तुम उल्लसित से गुनगुना उठते, "माइ लव इज लाइक ए रेड रेड रोज "

उन दिनों जिंदगी हमारे लिए महज बच्चों के खेल जैसी सरल थी। कहीं कोई उलझाव नहीं। बच्चे जैसे रेत में घरौंदे बनाते हैं, वैसे ही हम भविष्य के सपने संजोया करते। पार्क के एकांत में हम एक दूसरे में खोये घंटों बैठे रह जाते, दो अशरीरी तत्वों की तरह जिनकी सामासिकता एक अनूठे निर्द्वंद्व क्षण की सृष्टि कर डालती, समय भी तब अवधिविहीन हो उठता हमारे लिए।

सहसा रेलवे क्रासिंग के पास इंजन की सीटी सुनाई पड़ती और तुम चिहुक से पड़ते, 'पंजाब मेल आ गई, हमें समय का बिल्कुल पता ही नहीं चला।"

एक दिन तुम आए तो बिल्कुल बौखलाये से। मेरा दिल जोरों से धड़क उठा। बात क्या है आखिर ? "एकांत में चलो नीरू, एक जरूरी बात पूछनी है" तुमने सड़क पर आ कर रिक्शा रोकते हुए कहा, "शहीद पार्क।'

"आठ बज रहे हैं अब भला शहीद पार्क चलेंगे ?"

'हाँ ' तुमने छोटा-सा उत्तर दिया और सड़क पर चलते नियॉन साइन को देखने लगे।

पूरे रास्ते तुम चुप रहे। पार्क में अंधेरा था। सदा की तरह तुम फव्वारे के सामनेवाली बेंच पर आ बैठे और बिना भूमिका के बोले, "एक बात बताओगी नीरू ?"

"क्या बात है ? तुम परेशान से लगते हो।"

"तुम छुट्टियों में घर क्यों नहीं जाती ?"

"बस यों ही, कोई खास कारण नहीं,' मैंने किसी तरह अपने को संभालते हुए कहा।

"मुझे सच सच बताओ नीरू, मैंने जब से सुना है, बहुत परेशान हूँ।"
"क्या सुना है ?' आशका स रोम रोम काँप उठा।
"तुमने अपने पिता का देखा है ?'
"नहीं !'
'उनका नाम जानती हो ?"
'नहीं।"
"घर मे कभी उनकी तसवीर भी नही देखी ?"

"नही !" मैंने दात भीच लिए। तुम्हारा एक एक प्रश्न मेरे कलेजे पर हथौडे की चोट कर रहा था। तुम थोडी देर बस ही शात, निश्चल बठे फौवारे को देखते रहे। तुमन उस समय बिलकुल सफेद कपडे पहन रखे थे। चाँदनी के हल्के उजास म जब कि आकाश मे चाद हजार हजार तारो के साथ अठखेलिया कर रहा था, मैं तुम्हारे बाजू मे बिलकुल सहमी सी बठी थी—पता नही तुम यह सब क्यो पूछ रहे हो ?

'नीरू", सहसा तुम्हारा स्वर एकदम मृदु हो आया मेरा हाथ पकड कर अभिभूत से बोले 'नीरू, कुछ भी हो मैं सब कुछ सहने को तयार हूँ।"

"मुझे उम्मीद है, तुम मुझसे कुछ नही छिपाओगी।"

'लकिन हुआ क्या ?' प्रबल आधी के झोके मे उडते तिनके की तरह मैं काप उठी।

"मैं तुम्हारी माँ से मिलना चाहता हूँ। पता द सकोगी ?"
"किसलिए ?"
"तुम्ह अपनी माँ का पता मालूम है ?"
नही !"

अधेरे मे तुम्हारे चेहरे की प्रतिक्रिया मैं नही भाँप पाई। "नीरू ' तुमने बिलकुल निर्विकार भाव से मेरा कधा पकड लिया, जसे मैं कोई पत्थर की बुत होऊँ तुमन अपनी माँ को देखा है ?"

हाँ बडी मुश्किल से मैं बोल पायी, लग रहा था भीतर ही भीतर

पत्थर की तरह जमती जा रही हूँ—पाषाण शिला किसी शापग्रस्त अहल्या की तरह कहीं मैं भी पाषाण शिला न बन जाऊं अगर मन मन भर के हो आए इनका बोझ उठाऊँ तो कैसे ?

तुमने मेरा कांपता हाथ अपने हाथों मे ले लिया। इच्छा हो रही थी एक बार तुम्हारी आँखो मे झाँक कर देखू कहीं मेरी प्रतिच्छाया धूमिल तो नहीं हो रही ? तुम आज ऐसे सवाल क्यों कर रहे हो ?

अपनी माँ के विषय म तुम्हे क्या बताऊँ, मैंने उन्हे सिर्फ देखा भर है। उनके विषय म कुछ नहीं जानती। शुरू से उनका आचरण रहस्यमय रहा है। क्यो ? मुझे खुद पता नहीं। तुम अंधेरे म ही मेरा चेहरा टटोलने लगे, शायद जानना चाहते थे मेरी आखो मे आँसू तो नहीं।

"तुम मुझे सचमुच चाहती हो नीरू ? सच बताना।"

वह मेरी परीक्षा की घड़ी थी। तुम्हारा प्रश्न अपने आप मे इतना सपूर्ण था कि उसका वैसा ही संपूर्ण उत्तर देने के लिए मुझे अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को दाँव पर लगा देना था, पता नहीं तब तक भी उत्तर परिपूर्ण होता या नहीं। तुम्हे तसल्ली होती या नहीं।

☐

सहसा मेरे मन मे एक पागल सा विचार कौंधा और मैं बेंच से उतर कर नीचे तुम्हारे पाँवो के पास बैठ गयी, हरी घास पर। मैंने अपना सिर तुम्हारे घुटनो पर टेक दिया। उस अंधेरी रात मे मन एक अनोखे सुकून से भर उठा। अदभुत अपूर्व था वह क्षण, श्वेत परिधान म तुम बिलकुल देवदूत से लग रहे थे, हाथो मे अमृतघट लिए, जैसे मुझे विषकुंड से निकालने आये हो। नहीं, तुम्हारे रहते कभी मेरा अहित नहीं हो सकता !

तुमने हाथ पकड कर फिर मुझे अपने पास बैठा लिया। मैंने तुम्हारे कंधे का सहारा लेकर किसी तरह हाँफते हुए कहा, 'माँ के विषय म मुझे कुछ नहीं मालूम फादर वर्गीज से पूछ लेना, उन्हे सब कुछ मालूम है।'

"नीरू जिन्दगी म सिर्फ वही नहीं होता, जो हम चाहते हैं। कभी कुछ ऐसा अप्रत्याशित भी घट जाता है जिसकी हम कभी कल्पना नहीं कर सकते।

ऐसी विसगतियो को झेलना ही तो जिन्दगी है। हम हर स्थिति का सामना करने के लिए तयार रहना चाहिए।'

'मेरी माँ क विषय म तुम्हें फादर वर्गीज स सब कुछ मालूम हो जायेगा, उनसे मिल लो।'

'मुझ अब किसी स कुछ पूछना नही नीरू।"

तुम मुझ पर झुक आए। तुम्हार बाहुपाश म आबद्ध मैं मदहोश सी होने लगी, तभी माथे पर एक जलती सी छुअन महसूस हुई, तुमने रक्तबिंदी लगा दी हो जसे।

रेलवे क्रासिंग के पार कोई इजन शटिंग कर रहा था। बार-बार सीटी की आवाज सुनाई पडती और लगभग हर आवाज के साथ तुम्हारी गिरफ्त गाढी और कस जाती। तुमन लगभग फुस फुसा कर मेरे कानो म कहा, "मैं तुम्ह प्यार करता हूँ नीरू। और बस, मरी जिन्दगी का सिफ यही मकसद है कि तुम्हें प्यार करता रहूँ।'

मैं निहाल हो उठी। तुमने मुझ अकिंचन की झोली मे एक बार मे ही दुनिया की सारी दौलत उडेल दी हो जैसे, इतना सुख भला मैं अकले कसे भोग पाऊँगी बिना तुम्हारे साझे के। वह सुख, वह सम्मान, वह विश्वास, वह तृप्ति—सब कुछ तो तुम्हारा दिया था। फिर भला उ ह अकेले भोगन का मेरा हक कहा था ? बस इसी तरह जन्म जन्मान्तर तक तुम मरे सुख दु ख के भागीदार बने रहो और मुझे कुछ नही चाहिए।

उस रात भी मैं सो नही सकी। मन मे एक साथ सकडो सवाल उठ रहे थे। आखिर मा का व्यक्तित्व इतना रहस्यमय क्या है ? अपन को व मुझसे छुपाती क्यो हैं ? छुट्टियो मे मुझे कभी अपने पास क्यो नही बुलाती ? छुट्टियो मे मैं अन्य छात्राओ की तरह कभी अपने घर नही आई। सारा होस्टल खाली हो जाता। सिफ मैं अकेली बच जाती। फादर वर्गीज तब मुझ अपने पास बुला लेते। चच के पिछवाडे बने छोटे स कॉटेज मे रहते थे व। उनके साथ मेरा समय भी एक बधी लीक पर बहता रहता। सुबह शाम चच म प्राथना उसके बाद फादर के हर काम मे हाथ बँटाना। वे पुस्तकालय म होते तब भी

मैं उनके साथ होती। फुलवारी मे तो मेरे सहयोग के बिना कुछ कर ही नही पाते। वे कैंची से फूलो की अनावश्यक बढी डालियाँ कतरते, मैं कचरा साफ करती, वे पानी सींचते, मैं क्यारी ठीक करती।

छुट्टियों म ही कभी कभार माँ आ जाती सिर्फ कुछ घटो के लिए। मेरा हालचाल पूछती फिर तुरत फादर की ओर मुखातिब हो उठती, "नीरू को किसी और चीज की जरूरत तो नही ?"

यह सवाल वे मुझसे भी पूछ सकती थी, लेकिन उन्होंने मुझ से कभी कुछ पूछा नहीं। मेरे लिए फादर वर्गीज ही सब कुछ थे, मेरी सारी जरूरतें वही पूरी करते। मुझे बाद मे पता चला, मा ने उनके पास मेरी पढाई लिखाई तथा अन्य जरूरतो के लिए यथेष्ट रुपया रख छोडा था। बस कभी कभार के इन चन्द घटों के मिलन के अलावा मा से मेरा कोई सरोकार नही था। उन्होंने कभी चिट्ठी लिख कर तो मेरा कुशल क्षेम नही पूछा। शायद फादर वर्गीज ही उन्हे मेरे विषय म समय समय पर सूचना देते रहते थे। मैंने इस बार परीक्षा म अच्छा किया अब फलां क्लास म गई माँ को यह सारी जानकारी होती, तभी तो मुझे देखते ही हँस कर कहती, 'फर्स्ट आई हो न इस बार बडी खुशी हुई मुझे ऐसे ही खूब मन लगाकर पढा करो।'

एक दिन तुमने आते जाते सुनाया, "घरवालो को मैंने सकेत दे दिया है। मेरे लिए लडकी देखने की जरूरत नही। अब तो कुछ महीनो म ही थीसिस सबमिट कर दूगा पैनल म मेरा नाम आ गया है। नौकरी मिलते ही उन लोगो को तुम्हारे विषय म सब कुछ बता दूगा।'

तुम्हारा उल्लास उस दिन छलका पड रहा था। बच्चो की तरह किलक कर तुमने मेरा हाथ पकडा और गोल गोल चक्करघिन्नी से घूम गए, 'माई लव इज लाइक ए रेड रेड रोज लाइक ए रेड रेड रोज "

मेरे कपोल आरक्त हो उठे। नई दुल्हन की तरह शरमा कर मैंने अपना हाथ खींच लिया, 'मेरे घर म नव वधू के स्वागत की तैयारियाँ कितने जोर-शोर से हो रही हैं तुम्हे पता नही', तुमने खिडकी के पास कुर्सी खीच कर

बैठते हुए कहा   रोज ही साड़िया खरीदी जाती हैं, गहने गढाए जाते हैं—कभी सोचता हूँ उन गहनों को पहन कर तुम कैसी लगोगी   "

ढलती शाम की सुनहली धूप म तुम्हारा चेहरा सोने की तरह दमक उठा। तुमने गहरे रग की पेंट पहन रखी थी ऊपर हल्की सी शर्ट। छाती के एक दो बटन खुले थ। तुमने खिडकी से बाहर लाल गुलमोहर के गुच्छो की ओर देखते हुए फिर कहा, "मुझे तो रोमाच हो जाता है, यह सब सोच कर   ?"

लगा, क्षण भर को सारा का सारा गुलमोहर ही तुम्हारे चेहरे पर उतर आया है। गर्मी बहुत थी। तुमने प्रस्ताव रखा,   इस छुट्टी म ननीताल चलेगे।"

तुम अब बखूबी समझ गए थे मुझे कही जान के लिए किसी से इजाजत लेने की जरूरत नही अपनी मर्जी की मालिक हू। अपने विषय मे तुम्हारा इस तरह निणय लेना अच्छा ही लगा। मैंने विरोध नही किया।

नैनीताल म तुम मेरी छोटी स छोटी सुविधा का खयाल रखते। दो रात हम बिलकुल नही सो पाए थे। दरअसल यह प्रोग्राम ही तुमन इतनी जल्द बाजी मे बनाया कि रिजर्वेशन कराने का समय ही नही था।

जि दगी के थ्रिल को अधिक-स-अधिक रोमाचक बनाना ही इस यात्रा का उद्देश्य है नीरु   इसीलिए कुछ सोचना नही चाहता, बिना सोचे-समझे ही शुरुआत करनी है।' तुमने गिलास उठाकर सुराही स पानी डाला और गटा गट पी गए। पानी पीने म भी जसे कोई थ्रिल हो उसी तरह खाली गिलास को तुमन विजय गव से देखा, फिर दूसरा तीसरा गिलास भी खाली कर गये। दो रात जगने के बाद तुम शायद समझने लग थे थ्रिल वास्तव मे क्या है ? थकावट से देह चूर चूर हो गई थी।

पहला दिन सोते ही बीता। दूसरे दिन सुबह सुबह ही तुमने प्रस्ताव रखा ' जल्दी तैयार हो लो   बोटिंग करने चलेंगे।'

दिन को खाते समय तुमन ढेर सारी चीजें मगवा ली—आलू गोभी, मलाई कोफ्ते, पालक पनीर, रायता और भरवा मिर्च। रोटियो के साथ पुलाव

और दही बड़े भी थे। मेज पर प्लेटों का ढेर देख मैंने टोक दिया, "बाप रे, इतनी सारी चीजे एक साथ मँगवा ली। कौन खायेगा भला इत्ता सारा ?"

बगल मे ही एक दूसरा जोड़ा बैठा था। लड़की खूब चहक रही थी। बार-बार बेयरा को बुलाती और कुछ न कुछ ल आने का आडर देती।

"मुझे मसालेदार चटपटी चीजें बहुत पसन्द हैं नीरू", तुमने पनीर का एक टुकड़ा मुह मे डालते हुए कहा, "और ऐसी चटोर लड़कियां भी।"

तुम हँसने लगे, "और क्या, तुम तो कुछ खाती ही नही। उसे देखो फरमाइश पर फरमाइश किये जा रही है लगता है, सारा होटल ही डकार जायेगी।"



दिन ढलते लगा था, तुमने एकाएक हनुमानगढी चलने का प्रोग्राम बना लिया। जल्दी पहुचने के लिए तुमने सड़क का रास्ता छोड पगडडी पकड ली। बडी ऊँची चढ़ाई थी। हाथ भर पतली पगडडी और नीचे खडी ढाल। पगडडी पत्थरो से भरी थी। एक दो बार मेरे पाँव रपटे भी, पर तुमने सभाल लिया।

मदिर की सीढियो पर ही मैं निढाल होकर बैठ गयी। चारो ओर गहन शांति छाई थी। आकाश म तैरते मेघखडो के कारण सध्या का धुधलका बढ़ता ही जा रहा था। हम जसे खुद आकाश म थे। चारो ओर देह से टकराते सफेद सुरमई मेघ तुमने कौतूहलवश मुट्ठी फलाकर ब द कर ली। फिर खोलते हुए बच्चो की तरह किलक कर बोले, "यह देखो नीरू, क्षण भर म ये बादल पानी बन गए कैसा अदभुत "

सामने ही मदिर का शिखर था। मदिर की दीवारें जसे ठोस नहीं, वाष्प की बनी हो या शुभ्र मेघखडो की। वसी ही वाष्पीय तरलता लिये वे पसीज रही थी सारा वातावरण ही भीगा भीगा, पर मेरा तो जैसे गला सूख रहा था।

तुम पुजारी से माँग कर मेरे लिए पानी ले आए। पीतल के चमचमाते लोटे मे स्वच्छ शीतल जल—"इधर एक ओर आ कर ओक लगा लो", तुमने कहा।

तुम मेरी जुडी अजुली मे पानी डालते गये। पूरा लोटा खाली हो गया। तो तुमने कहा 'अब तो जी भर गया न ?"

लेकिन मेरी प्यास क्या बुझी थी ? मैं तो ज"मज मान्तर की प्यासी थी। भला लोटे भर जल से मेरी प्यास बुझती ? शायद तुम मदाकिनी की धार भी उडेल दते तो मरी प्यास नही बुझती, मैं उसी तरह अजुली बाँधे तुम्हारे सामने बैठी रही "दो, और दो, मेरी यह प्यास तो अपराजेय है, कभी बुझेगी नही।'

'कैमरा लेकर आता तो तुम्हारी एक तसवीर उतार लेता', लोटा वही रख कर तुम हँसने लगे। सचमुच अपूव था वह क्षण भ्रम मे डूबे तुम रहस्य मे उलझी मैं।

उस ठड म ठडा पानी पीने के बाद भी मुझे जलन महसूस हो रही थी, जसे कोई अज्ञात ज्वाला पिघले सीसे की तरह मेरी रगो मे भरती जा रही हो दुर्दा त प्यास बन कर।

हनुमान की भीमकाय प्रतिमा के सामने तुम भक्तिभाव से हाथ जोडकर खडे थे। धीरे धीरे हिलते अधर, ललाट पर पुजारी द्वारा लगाया रक्त चदन का टीका सौम्य, शात मुखमण्डल तुम्हारे चारो ओर प्रकाश का एक वृत्त सा खिच आया था जिसके मध्य तुम आलोकप्र'भा से जगमगा रहे थे। तुम्हारी देह से शत शत आलोक किरणें फूट रही थी। तुम्हारा वह रूप सृष्टि की विराटता मे अणु अणु मे व्याप गया था। मेरे लिए सिफ तुम ही तुम थे हनुमान की प्रतिमा म भी, मन्दिर की विशालता म भी और उस घनी रहस्य मयता म भी। मेरी आँखें सिफ तुम्हें देख रही थी। मेरे कान सिफ तुम्हारी आवाज सुन रहे थे। मेरी देह सिफ तुम्हारे स्पश का अनुभव कर रही थी, उस समय तुम्हारी वह आकृति कभी दि"य लग रही थी। पूणपुरुष हाँ, पूण पुरुष ही तो थे तुम, ऐसे ही पौरुष की चाह मैंने की थी। मैंने उसकी सम्पूण आसक्ति

को चाहा था। उसमे अपना विलय, अपने मे उसका विलय। मेरा अग अग तप्ति के सुख मे डूबने लगा।

"चलो नीरू, अब वापस चलें, बहुत देर हो गई।"

यत्रवत् मैं तुम्हारे पीछे पीछे सीढियाँ उतरने लगी, जैसे मेरा बोझ उठा कर तुम खुद चल रहे हो। तुम्हारा वश चलता तो मेरे पाँवो मे भी अपनी ताकत भर देते। हम पूरा रास्ता वैसे ही साथ साथ चलते रहे कदम से कदम मिलाकर। लग रहा था यह चलना कुछ कदमो का नही, यह साथ तो अनन्त काल तक रहेगा। अनन्त पथ पर बढते हम टूट टूट कर हार हार कर भी इसी तरह नई जिंदगी तलाशते रहेंगे। तुम्हारे कदमों में इतनी शक्ति है कि मेरी समग्र शरीर-चेतना को मेरुदड की तरह उठाये रहे फिर भी थके नही। निमम काल प्रवाह भी हमारा कुछ बिगाड नही सकता। तुम्हारे कदमो से कदम मिला कर चलना निश्चय ही विलक्षण अनुभव था।



नैनीताल से वापस आये अभी हफ्ता भी नही गुजरा था कि फादर वर्गीज ने बताया, "तुम्हारी मा की हालत ठीक नहीं नीरू, उन्हे कैंसर हो गया है।"

मैं सकते मे आ गई। पल भर को लगा, मेरे इद गिर्द सडन की, विनाश की लपट फिर छा गई है। सर्वत्र विनाश ही विनाश। मैं बुरी तरह घबरा उठी, "क्या होगा अब मां कहाँ है ?"

"जेल मे, फादर का निस्तेज स्वर मुझे हिला गया।"

"माँ, जेल मे क्यो है ?"

फादर के हाथ अनायास रोजरी पर पहुँच गय "यसु उनके होंठो से हल्की सी ध्वनि फूटी।

"माँ जेल मे क्यो हैं फादर ? माँ के विषय मे आपने अब तक मुझे कुछ नही बताया। अब जाने बिना नहीं रहूँगी। साफ साफ बताइए, माँ जेल म क्यो है ?"

"नीरू हैव पेशेंस माई चाइल्ड हैव पेशेंस, "मेरे करीब आ कर

उन्होने मेरे कधे पर हाथ रखते हुए कहा, "मगलमय प्रभु सबका कल्याण करेगा।"

"लेकिन माँ जेल मे क्या है? मुझे भुलावे मे मत रखिए, साफ साफ बताइए। जेल मे है तो इलाज कैसे हो रहा है? फादर प्लीज, मुझे जल्दी सब कुछ बताइए।"

मेरा गला भर्रा गया, मेरी घबराहट देख फादर वर्गीज भी विचलित हो उठे। मुझे समझाते हुए बोले, "दुख के समय धीरज से काम लिया जाता है मेरी बच्ची घबराओ मत भगवान पर भरोसा रखो।"

लेकिन माँ जेल मे क्या हैं फादर उन्होने कौन सा गुनाह किया है।"

फादर के हाथ रोजरी पर लगातार घूम रहे थे, "आओ चर्च में चलें, प्रार्थना करने से मन को शांति मिलेगी।"

'माँ जेल मे क्या है फादर जाने बिना मुझे शांति नही मिलेगी।"

फादर के पीछे पीछे चर्च की सीढियाँ चढते मैंने सख्ती से कहा, 'मैं माँ को देखना चाहती हू।'

फादर ने मरियम की मूर्ति के सामने जा कर घुटने टेक दिये। उनके दोनो हाथ अब पीछे की ओर जुडे थे। आँखें बद, होठो से अस्फुट प्रार्थना के स्वर निकल रहे थे। वे स्वय बहुत घबराये थे, शायद इसीलिए मरियम की मूर्ति के सामने इस तरह दीन बन कर खडे थे, उन्हे अपनी शक्ति चुकती सी लग रही थी फिर मुझे समझाते तो कैसे?

'यह दुनिया बडी अजीब है मीरू, जानती हो न, अपने अत समय ईसा को खुद ही क्रास उठा कर वधस्थली तक जाना पडा था। जिस दुनिया को उन्होने प्रेम और भाईचारे का दिव्य सदेश दिया उसी दुनिया ने उन्हे बदले मे काँटो का ताज दिया। ऐसे ही चलता है सब।' फादर का चेहरा भयानक रूप से स्याह हो आया था, जैसे उन्होने बद आँखो से ही कोई भयानक हादसा देख लिया हो।

'फादर।"

'घबराओ मत मेरी बच्ची, आज रात की गाडी से हम उसे देखने चलेंगे, जा कर अपने कपडे वगैरह ले आओ।"

पूरे रास्ते मैं मा के विषय म सोचती रही। मैं अपनी मा से इस कदर जुड़ी हूं, उस दिन ही पता चला। माँ माँ सिफ माँ ही जेहन पर छायी रहीं। मा जैसे अनत आकाश बन कर सिर पर छा गयी हो माँ जसे अछोर धरती बन कर पाँवों के नीचे बिछ गयी हो माँ माँ मेरा हृदय चीत्कार कर उठा।

मुझे बार बार माँ की वह आकृति याद आती रही जब वे मुझसे मिलने आया करती थी। तब माँ की मुस्कराहट का मम मैं समझ नही पायी थी। पता नहीं माँ क्या थी? रहस्यमयी ममतामयी या छलनामयी? या एक साथ ही सब कुछ। मैंने सीधा सवाल माँ से ही किया, 'सच सच बताओ माँ तुम जेल क्यो आयी, कैसे आयी? मैंने जब से सुना है पागल हुई जा रही हूं।"

"पगली।" उस भयानक घडी मे जब कि मौत का शिकजा उन्हे क्षण-क्षण जकडता जा रहा था, व बडी निश्चितता से मुस्करायी, 'ऐसे भी कोई अधीर होता है, जेल तो बहुत बडे बडे लोग जा चुके हैं, महात्मा गांधी पडित नेहरू।

"मा, मुझ बहलाने की कोशिश मत करो, सच सच बताओ, "मैं लगभग चीख सी पडी, "आज तक तुमने अपने विषय म मुझे कुछ भी नही बताया।'

"क्या करेगी जान कर?" वे अब भी मुस्करा रही थी। बीमारी ने उनका शरीर हड्डियो का ढाचा मात्र रह गया था पर मुखमडल एक अपूव आभा से दीप्त था। आसन्न मृत्यु का आभास मिल जाने पर भी वे विचलित नहीं हुई थी बल्कि बडी शांति से उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

"तू नाहक घबरा रही है नीरू मेरे लिए तुझे चिंता करने की जरूरत नही।'

लेकिन माँ कुछ बताओ तो सही, तुम्हारी यह दशा कैसे हुई, कौन जिम्मेदार है इसके लिए।'

'यह सब मेरे भाग्य का दोष है, दोष किसे दूँ, मुझे किसी से शिकायत नहीं।"

"लेकिन माँ, अपने विषय में कुछ तो बताओ कौन हो? क्या करती रही हो? अब तक कहाँ रही? लोग मुझसे तुम्हारे बारे में पूछते हैं तो बता नहीं पाती। सच माँ कुछ तो मेरा खयाल करो, अब मैं बच्ची नहीं तुम्हारे विषय में आज सब कुछ जान कर रहूँगी।"

माँ हँसते हुए फादर की ओर घूम पड़ी, "अब आप ही इसे समझायें भला, पागल हो गयी है। मेरे विषय में जान कर क्या करगी?'

तभी एक नर्स माँ को इंजेक्शन लगाने आ गयी। दाँत भींच कर माँ ने सुई चुभन का दर्द सह लिया, फिर नर्स के जाते ही यथावत मुस्कराने लगी, 'भला बताइए, मेरा अतीत जान कर यह क्या करेगी?"

'तुम जेल कैसे गयी माँ क्या अपराध किया था तुमने?"

'जो बीत चुका उसे दोहराने से फायदा क्या? बस, यही समझ लो, अब बाकी की जिंदगी यहीं कटनी है जेल वालों ने मेरे साथ कोई बेरहमी नहीं की, बल्कि बीमारी की खबर लगते ही अस्पताल भिजवा दिया।"

मैंने लाख कोशिश की अपने विषय में उन्होंने कुछ नहीं बताया। उन्हें यूटरस का कैंसर था। हालत काफी चिंताजनक थी। मैं उन्हें छोड़ कर जाने को बिलकुल तैयार नहीं थी, लेकिन वे अपनी बात पर अड़ी रहीं, "तुझे फादर के साथ ही लौट जाना होगा, यहाँ रह कर क्या करेगी?"

'लेकिन इस हालत में तुम्हें छोड़ कर मैं जा नहीं सकूँगी माँ, कम से-कम इस समय तो मुझे अपने पास रहने दो।'

माँ ने क्षण भर को आँखें बंद कर लीं। मुख पर थकावट के चिन्ह उभर आये थे। बाहर जूते चरमराये। पहरे पर के सिपाहियों में से एक ने भीतर झाँक कर देख लिया। पता नहीं माँ की दुर्बल काया जो हिल-डुल भी नहीं सकती थी, कैसे भाग जाती।

माँ का गोरा रंग झँवा कर ताँबई हो गया था। पीठ में भयानक दर्द

;ता था, फिर भी तकिये का सहारा ले कर वे किसी तरह उठ बैठी, "जरा, ...
से अच्छी तरह देख लूं।"

मेरी आँखें भर आयी, उनके सामने झुकती हुई भरे गले से बोली,
माँ क्या हालत बना ली अपनी।"

उनके होंठ काँपे, धीरे धीरे उनकी गर्दन भी हिलने लगी, मेरा हाथ खींच
र उन्होंने सीने पर रख लिया और आँखें बंद कर जैसे अपने आप से कहने
गी, "मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं, जिन्होंने मुझे छला, उनसे भी नहीं,
योंकि उनके छल को मैंने अपनी नियति माना। अपनी नियति साथ ले कर
जा रही हूँ और किसी का कुछ देना पावना नहीं है मेरे ऊपर, सब कुछ
कर्ता पर दिया।'

उनकी आवाज पल पल खामोश होती गयी। थक कर वे निढाल सी फिर
लेट गयी, "तू जा अब तू चली जा बस, एक यही तमन्ना थी तुझे जी भर
देख लूं, देख लिया। अब तुझे यहाँ रहने की कोई जरूरत नहीं। आज
रात की गाड़ी से फादर के साथ चली जा। फादर इसका खयाल रखेंगे, बड़ी
हो गयी लेकिन अभी बचपना नहीं गया, बिलकुल अबोध है।"

"माँ।" मैं अपने आंसुओं को रोकती हुई माँ के सीने पर झुक गयी।
लग रहा था कलेजा फट कर दो टूक हो जायेगा अगर इसी तरह रुलाई का
वेग रोकती रही तो, लेकिन माँ के सामने खुल कर रो भी तो नहीं सकती
थी।

"धुत पगली।" माँ ने अपने दुर्बल हाथों से मेरी पीठ सहलाते हुए
कहा, "बस इतनी सी बात पर रोने लगी। मुझे कुछ नहीं हुआ, तू बिलकुल
निश्चिंत हो कर जा।"

'लेकिन माँ, तुम्हारी हालत अच्छी नहीं।"

"अरे जा भी, मुझे कुछ नहीं हुआ, ठीक हो जाऊँगी। बस ऐसे ही थोड़ी
तकलीफ है।'

उनकी वह हँसी साधारण हँसी नहीं बल्कि काल गह्वर से आती मृत्यु
की भयानक चीत्कार थी। भय से मैं सिहर उठी। अंधेरा घिरने लगा था।

मुझे लगा, सध्या के धुधलके के साथ ही मत्यु अपने भयानक डैन फैलाय माँ के चारो ओर मँडराने लगी है, हम यहाँ से हटे नही कि दबोच लेगी।

'अब तुम जाओ।" माँ ने जसे अपने हृदय का समस्त जोर लगा कर कहा, 'स्टेशन यहाँ से दूर है, जाने मे समय लगेगा।"

फिर उन्होने अपना कांपता हाथ फादर की ओर बढा दिया। फादर ने सीने पर क्रॉस बना कर आमीन कहा और मा का हाथ थाम लिया, 'मेरे लिए चिंता करने की जरूरत नही फादर। नीरू का खयाल रखेंगे।'

उनकी आँखें छलछला आयी। फादर भी अपने को रोक नही सके, जेब से रूमाल निकाल कर आँसू पोछते हुए उन्होने मेरी ओर बढ कर कहा, "अब चलो नीरू ।"

मैंने मां की ओर देखा। वे आँखें बद किये बिलकुल शांत लेटी थी, दोनो हाथ छाती पर जुडे थे।

माँ का ने कर मेरे सारे प्रश्न अनुत्तरित ही रह गये। रात की गाडी से फादर वर्गीज के साथ मे लौट आयी। फिर माँ को कभी देखा नही सिर्फ एक टेलिग्राम मिला, महीने भर बाद माँ नही रही सच कहती हूँ खबर पा कर मैं रो भी नही सकी सिर्फ आँखो के आगे मा की आकृति घूमती रही— "अपनी नियति साथ ले कर जा रही हूँ।'

माँ की अत्येष्टि के बाद मैं फादर वर्गीज के साथ ही लौट आयी जेल अधिकारियो ने माँ का सामान हम सौंप दिया था—एक छोटा सा सूटकेस जिसमे माँ के कपडो के बीच एक छोटी सी काली जिल्द की डायरी भी थी। बस यही मा की अमानत थी जो व मुझे दे गयी थी या जेल अधिकारियो की कृपा से मुझे मिल गयी थी। माँ के कपडो से भीनी भीनी इत्र की खुशबू निकल रही थी, फिर भी मुझे लगा, मेरे इद गिद सडन की गध और तीव्र हो उठी है। मैं फूट फूट कर रो पडी।

मैंने माँ के विषय म तुम्हे कुछ नही बताया। अगर बताती तो तुम उसी क्षण उन्हे देखने जाने को तैयार हो जाते। तुम्हारी उदारता की मैं कायल माँ को उस हालत म देख कर भी तुम मुझसे घृणा नही करते बल्कि मुझे

दिलासा देते। फिर भी माँ के विषय मे तुम्हें कुछ बताने का साहस मैं नही जुटा पायी। माँ की मृत्यु के विषय मे भी मैंने तुम्हें कुछ नही बताया।

मेरी मन स्थिति से अनभिज्ञ तुम उन दिनो अत्यधिक उत्साह म थे। तुम्हारी नौकरी लग गयी थी। जब भी आत, आँखो मे सुनहले भविष्य का सपना होता, "आज एक मकान देखा है नीरू, चलो तुम भी देख लो, यदि तुम्हे पसद हो तो आज ही एडवांस दे द।"

कभी कहते, 'जरा फर्नीचर मार्ट तक चलो न पलँग और सोफा सेट के लिए ऑर्डर द दू।"

तुम्हारा उत्साह मुझे शब्दवेधी बाण की तरह वेध जाता। काश, तुम्हारी तरह मैं भी निर्द्वन्द्व हो कर भविष्य के सपने देख पाती। माँ का कहा अक्षरश सत्य लगने लगा, एक बार उन्होने कहा था, 'भविष्य तो भुलावा है। वर्तमान मे जीने की आदत डालो, क्योकि आने वाली हर पल वर्तमान बन कर ही अपना होता है। भविष्य पर किसी का वश नही।' पर माँ की तरह मैं निर्द्वद्व नही हो पायी। तुम्हार उत्साह का मैं स्वागत नही कर सकी।

"मैंने मा को तुम्हारे विषय म सब कुछ बता दिया है, उन्ह कोई आपत्ति नही।' तुमने मेरा हाथ दबाते हुए कहा।

'परस्पर सबध बनाये रखने के लिए किसी बधन म बधना आवश्यक है क्या? हम दो मित्रो की तरह रहते हुए भी तो जीवन भर बा साथ निभा सकते है।'

तुम्हारी आँखें अचरज से कौडियो की तरह फैल गयी, "तुम यह क्या कह रही हो नीरू, कही तुम मजाक तो नही कर रही?"

"मजाक नही ठीक ही कह रही हूँ' अनजाने ही मैं भीतर स सख्त होने लगी थी, "हमारा सबध तो गगाजल की तरह पवित्र है, फिर इस पर कोई मुहर लगाने की जरूरत क्यो?"

"नही नीरू माई लव, एसा न कहो, ऐसा न कहो प्लीज!" तुमने मेरा हाथ और जोर से पकड लिया, "मैं तुम्हार बिना नही रह सकूगा।"

"मैं अलग होने की बात कहाँ कह रही, हम हमेशा साथ साथ रहेंगे, दो मित्रों की तरह।"

तुमने मेरा हाथ छोड दिया और उद्विग्न से खिडकी के पास जा खडे हुए।

'मैं समाजशास्त्र की किसी बंधनमय आवश्यकता की कायल नहीं। तुम्हीं तो कहते हो, लाइफ मे थ्रिल होनी चाहिए। यह नया प्रयोग एक थ्रिल ही तो होगा।'

'नीरू !" तुम अकुला कर चीख से पडे, "तुमने यह सब पहले क्या नहीं कहा ?"

अब तो कह रही हूँ न !'

' नहीं नीरू ऐसा मत कहो, मैं कहीं का नहीं रहूँगा मैं मैं ।"

"इसमे घबराने की क्या बात है ? हम अब भी दो मित्रों की तरह हमेशा साथ साथ रहेंगे गर्मियों मे एक साथ पहाड जायेंगे, कभी शिमला, कभी मसूरी, कभी कश्मीर रोज नये अनुभव होंगे।

' ओह, अब बस भी करो ।' तुमने सिर थाम लिया "अब और नहीं सुन सकूँगा।' न जाने तुम्हें क्या हो गया एकाएक !

थोडी देर तुम वैसे ही सिर थामे बैठे रहे मैं तुम्हारी ओर देख नहीं सकी। एक पत्रिका उठा ली या ही। "हूँ ।" तुमने तल्खी मे भर कर उठते हुए कहा, 'तो मेरा फैसला भी सुन लो। तुम्हारे साथ जिस मंजिल तक पहुँच चुका हूँ, वहाँ से पीछे नहीं लौट सकता, आज न, कल तुम्हें अपना फैसला बदलने को मजबूर होना पडेगा।'

तुम तेजी से बाहर चले गये। मैं हतप्रभ सी देखती रह गयी उस खाली कुर्सी को जिस पर तुम अभी बैठे थे। वहीं जमीन पर तुमने अधजली सिगरेट फेंक दी थी। उस जले टुकडे को उठा कर मैंने एक कश लगाया, खासी आ गयी। फिर दूसरा कश तीसरा कश मुँह कसैला हो गया। देर तक खासी आती रही।



तुम सुबह सुबह ही आये थे। बदन पर खद्दर का शुभ्र कुर्ता पाजामा, कंधे पर उजला ही शाल। तुमने आते आते ही कहा, "जल्दी से तयार हो लो, मंदिर चलेंगे।"

"क्या, आज मंदिर की याद कैसे आ गयी ?"

"आज महाशिवरात्रि है न, भोलेशंकर से भीख माँगनी है। देखू देते हैं या नही।"

"भीख मांगोगे ?"

"हाँ, आज भोलेशंकर की परीक्षा लूंगा देखू कैसे दाता है !"

"क्या मांगोगे भला ?"

"एक बहुत छोटी सी चीज, तुम पहले उठो तो।"

"जरा सुनू भी ?" मैंने परिहासपूर्वक कहा "बता दोगे तो मैं अपनी ओर से भी जोर लगा दूगी।"

"नही, जो कुछ मांगना है अपने बल बूते पर मांगूगा, उसमे तुम्हारे साझे की जरूरत नही। तुम जोर लगाओगी तो उसमे तुम्हारा भी हिस्सा हो जायगा।"

"ठीक है मैं अपना हिस्सा नही लूगी, तुम बताओ तो क्या मांगोगे ?"

"आज भगवान शंकर से विष मांगूगा—हलाहल विष कालकूट।"

"विष मांगोगे ?"

"और क्या जब अमृत मिलने की उम्मीद न रहे तो आदमी क्या चाहेगा, विष ही तो, अमरत्व का वरदान ले कर तो आया नही।"

मैं स्तब्ध रह गयी। यह निराशा, और तुम्हारे मुह से ? कहीं तुम अपनी पराजय तो नही स्वीकार रहे। तुमने भगवान शंकर से क्या माँगा नहीं जानती। मंदिर मे उस समय प्रात की आरती हो रही थी घंटे घड़ियाल के साथ गूंजता प्रार्थना का स्वर, "नमामीशमीशान निर्वाण रूप।"

तुम शिवलिंग की दायी ओर ध्यान मे लीन खड़े थे। जुड़े हाथ, मुदी पलकें और उन्नत मस्तक। याचक बन कर भी तुम्हारा गर्व अखंडित था।

तुमने सिर नहीं झुकाया था। तुम्हारी इस अपराजेयता को ही तो मैंने स्वीकारा था। मैंने मन ही मन भगवान शंकर से कहा, 'इनके हिस्से का विष भी मुझे ही दे दो भगवन मैं तो विषपायी हूँ जन्म जन्म की विष से मेरा कोई नुक्सान नहीं होगा।'

उस दिन जीवन में मैंने पहली बार उपवास रखा, निर्जल, इस संकल्प से कि इस उपवास से मिले पुण्य का फल भी तुम्हें ही मिले। तुम्हारी अपराजेयता अक्षुण्ण रहे। भगवान शंकर ने उस दिन मेरी सुन ली थी तभी तो तुमने एकाएक विदेश जाने का फैसला कर लिया।

मेरे ड्राइंग रूम में जो ऐश ट्रे है वह तुम ही खरीद कर ले आये थे। काले पत्थर पर सफेद नगीने जड़े हैं बिलकुल जड़ाऊ कंगन की तरह चमचम।

तुम जब विदेश जाने लगे थे तभी यह ऐश ट्रे खरीद कर दे गये थे, लो तुम्हारे लिए कंगन तो नहीं ला सका यह ऐश ट्रे ही सही। सिगरेट तो अब तुम भी पीने लगी हो न! अकेली बैठ कर जब सिगरेट पीना तो इसे सामने रख लेना। मेरी उपस्थिति का अहसास बना रहेगा!"

तुम्हारी उपस्थिति कहाँ नहीं! तुम मुझसे सात समुंदर दूर बैठे हो फिर भी तुम्हारी उपस्थिति का अहसास मेरे घर की हर चीज में बसा है नजर घुमा कर देखती हूँ तो समझ में नहीं आता तुम्हें कहाँ से अलग करूँ, हर चीज पर तुम्हारी अँगुलियों के निशान, तुम्हारी पसंद की छाप, तुम्हारी ही खरीदी हुई घर में तुम छाये से लगते हो सिर्फ तुम ही तुम अकेली बैठ कर मैं स्वयं भी तो तुम्हारे विषय में ही सोचा करती थी।

एकरस जिंदगी से हम दोनों ही ऊब गये थे इसीलिए अब हमारे बीच वह ऐश ट्रे ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गयी थी। तुम चुप बैठे एक के बाद एक सिगरेट सुलगाते चले जाते। धुएं के गुबार में कमरे की हर वस्तु संदिग्ध नजर आती। कभी तुम ऐश ट्रे को देखते कभी छत की कड़ियों को, बस यों ही बैठे शाम से रात हो जाती। बातें करने को हमारे पास कुछ था ही नहीं।

विदेश से कुछ दिनों तक तुम्हारी चिट्ठियाँ बराबर आती रही। फिर धीरे धीरे यह सिलसिला भी समाप्त हो गया। वर्षों पहले एक बार अखबार में देखा था। तुम्हारा नाम तुम्हारी तसवीर—डी लिट की डिग्री ले कर कर तुम स्वदेश वापस लौटे थे। उस दिन भी गर्व से मेरा सीना फूल उठा था।



कॉलेज का रजत जयंती समारोह मनाया जा रहा था। बड़े जोर शोर से तैयारियाँ हो रही थी। प्राचार्या होने के नाते सारी जिम्मेदारी मेरी ही थी। सेक्रेटरी भंडारी साहब प्रायः रोज ही कुछ नया सुझाव दे जाते।

उनके मुँह से ही सुना, समारोह में मुख्य अतिथि बन कर तुम आ रहे हो, तुम्हारे साथ तुम्हारी विदेशी पत्नी भी होगी। तुम्हारा नाम मेरे कानों में मलय चन्दन के घोल सा टपक गया। क्या हुआ जो तुम्हारी पत्नी भी साथ आ रही थी? मुझे उनके भाग्य पर ईर्ष्या नहीं हुई। तुमसे कोई शिकायत भी नहीं।

तुम आ रहे हो, मेरे लिए इतना ही काफी था। तुमसे मिलने की कल्पना मात्र से मुझ पर नशा सा छाने लगा। चालीस वर्ष की उम्र में मेरे भीतर तरुणाई की कोपलें फूटने लगी थी। तन मन में कशोय की सुगबुगाहट लिये मैं सारी सारी रात करवटें बदलती रह जाती, इतने वर्षों में कहीं तुम बदल तो नहीं गये? अगर तुमने मुझे नहीं पहचाना तो ? मैं पसीने पसीने हो उठती। सचमुच, अगर तुमने मुझे नहीं पहचाना तो ? आईने के सामने खड़ी हो कर मैं बार बार अपने अंग प्रत्यंग को निहारती ये बदल गये हैं क्या? चेहरा तो अब भी वैसा ही है जैसा सोलह वर्ष पूर्व था। हाँ, अब पहले से कुछ भरा भरा जरूर लगता है कुछ सलवटें भी पड गयी हैं लेकिन क्या तुम पढ पाओगे, सलवट की हर लकीर पर तुम्हारा ही नाम खुदा है!

उत्सव की तैयारियाँ कराते-कराते एकाएक मेरी कनपटियाँ झनझना उठती 'अरे भई देखो, पंडाल खूब ऊँचा बनवाना और जरा बड़ा भी। और फाटक से ले कर पंडाल तक मंगल कलश जरूर रखना, पंडाल को

लालहरी झंडियों से नहीं, फूल मालाओं से सजाओ   दीपस्तम्भ के चारों ओर एक अल्पना भी बनवा दो।"

स्वागत गान भी मैंने खुद ही लिखवाया था, एक स्थानीय कवि से कह कर। शब्द रचना मेरी अपनी थी, 'देखिए, उनका व्यक्तित्व बहुत ही शालीन है -खूब ऊँचा उन्नत, गर्वित मस्तक। वे हिमालय की तरह महान हैं, सागर की तरह गम्भीर और   और आकाश की तरह विशाल   ।"

कवि महोदय मुस्करा पड़े थे, "लगता है आप उन्हें काफी करीब से जानती हैं।"

बिलकुल सोलह साल की किशोरी की तरह ही मेरे कपोल आरक्त हो उठे थे। सचमुच, इतना उत्साह मुझे नहीं दिखलाना चाहिए था। लोग क्या कहेंगे भला ? तुमसे मेरा पूर्व परिचय है, किसी को बता नहीं सकी।

मुख्य अतिथि के रूप में तुम्हें देख कर एक बार फिर मेरी छाती धड़क उठी। एक साथ ही उत्साह के उमंग के, आवेग के ढेरों भाव स्पंदित हो उठे और मैं आगे बढ़ते बढ़ते रुक गयी।

तुम बिल्कुल मेरे सामने खड़े थे आंखों में स्निग्ध धवल पहचान लिये। तुम जरा भी नहीं बदले थे। सिर्फ रंग जरा धीमा पड़ गया था। वही शालीन व्यक्तित्व, वही दर्प से भरा मुखमण्डल, वही दुग्धफेन सी मुस्कान "नीरू तुम   ?"

पूर्व परिचय का वह अनाम संकेत तुम्हारी आंखों में लहरा उठा, 'तुम यहां हो मुझे मालूम नहीं था।

क्षण भर का ही वह अनाम संकेत मुझे नया जन्म दे गया। तुम अकेले ही आये थे। तुम्हारा अकेला होना अच्छा लगा। उस समय शायद तुम्हारे साथ किसी अन्य को देख कर मैं पागल हो उठती। तुम्हारे साथ साथ मंच की ओर बढ़ते हुए अचानक मुझे पुराने दिनों की याद हो आयी, जब सारी की सारी शाम हम इसी तरह सड़कों पर निरुद्देश्य घूमते बिता देते। क्षण भर को लगा तुम होंठों-ही होंठों में गुनगुना रहे हो, माई लव इज लाइक ए रेड रेड रोज ।"

लडकिया ने स्वागत गान शुरू कर दिया था, "तुम हिमगिरि से उज्ज्वल निमल ।"



सुबह सुबह तुम्हें अपने यहाँ देख कर मैं हैरान रह गयी बिलकुल पहले की तरह ही तुम चुपचाप आ कर ड्राइग रूम मे बठ गये थे। तुमने सिगरेट सुलगा ली थी और छत की कडियो को घूरते हुए धुएँ के छल्ले बना रहे थ। सामने वही पुरानी ऐश ट्रे रखी थी।

तुम्ह देख कर क्षण भर को मैं भूल ही गयी, हमारे बीच समय का कितना गहरा अतराल खडा है। लगा, तुम अभी अभी कहोगे, 'कही एकांत मे चलो नीरू।"

तुम बिलकुल नही बदले थे। सिर्फ कनपटियो के पास दो चार केश सफेद हो आये थे। तुम्हारी आँखो मे वही अकुलाहट थी। वही आत्मीयता भी। यत्रचालित सा मैं अनजाने ही तुम्हारी बगल मे बैठ गयी, तुमसे सट कर। तुम्हारी देहगध मेरे नथुनो मे भरने लगी। मैं मदहोश सी होने लगी, बीच के वे पन्द्रह वष जैसे किसी तहखाने मे बन्द हो गय हो, तुमने मेरी पीठ पर हाथ रख दिया 'नीरू ।"

मैं कुछ बोल नही पायी। लगा सुबह के प्रखर उजाले मे मैं तुमसे आँखें नही मिला पाऊगी। कल की बात और थी। कल सध्या के धूमिल आलोक मे मेरा अस्तित्व सुरक्षित था। अब यह प्रखर उजाला मुझे बेपद कर देगा। यह भावुकता अब मुझ शोभा नही देती। फिर भी वह न जान कौन सा सम्मोहन था, मैं चाह कर भी तुम्हार कधे से अलग न हो सकी, जैसे किसी मन्त्रपूत डोर मे तुमने मुझे बाँध लिया हो।

देर तक हम वैसे ही भाव विह्वल एक दूसरे मे खाये से बैठे रहे। बाहर ठण्ड काफी थी। ठण्ड की लहर हमारी रगो म मदिरा की धारा बन कर प्रवाहित हो उठी थी शायद, तभी मैं पसीने पसीने हो उठी थी। तुम्हारे माथे पर भी पसीन की बूदें चुहचुहा आयी थी। उस नशीले माहौल मे सब कुछ बदला बदला लगने लगा था वह प्रखर उजाला वह अलसायी धूप वह

सुगंधित हवा अचानक उस मंद माहौल में फागुन की गुनगुनाहट भर गयी थी—आम के बौरों जैसी मादक, कोयल की कूक जैसी मीठी, भौंरों की गूंज जैसी उन्मत्त वह एक उन्माद ही तो था। पागल उन्माद !

अचानक गुलमोहर के पत्ते हिले और खिड़की के पास ओस की बूंदें टपक पड़ीं तुम बाहर देखने लगे 'जिन्दगी इतनी निर्मम है नीरू, अगर पहले पता होता तो इस रास्ते कभी बढ़ता ही नहीं। अब तो जिन्दगी और मौत में मेरे लिए कोई अन्तर ही नहीं रह गया। बस यही समझ लो, जिन्दा हूँ किसी तरह।

"याद है, एक बार तुमने कहा था लाइफ इज रियल, एण्ड डेथ इज नाट इटस गोल।" लेकिन अब तो लगता है, जिन्दगी का लक्ष्य मृत्यु के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता।'

मैं जानती थी, तुम यह सब क्यों कह रहे हो, लेकिन शायद तुम नहीं जानते आदमी जो चाहता है यदि उसे पा ले तो पूर्णकाम हो जाय और पूर्णकाम होना ही तो मौत है, फिर उसकी कोई जिजीविषा ही नहीं रहेगी, न कोई ललक न कोई इच्छा ऐसी जिन्दगी का बोझ भला ढो पाओगे

"अब तक जितना विष मैं पी चुका, उसकी ज्वाला अब किसी भी अमृत कुंड को जला देने के लिए पर्याप्त होगी।'

तुम उठ कर रेलिंग से टहलने लगे 'खैर छोड़ो इन बातों को मैं आज यहाँ यह सब दोहराने नहीं आया, जो बीत गया। तुमसे सिर्फ एक सवाल पूछने आया हूँ, तुम खुश हो न ?"

तुम कमरे में रखी एक एक चीज को गौर से देख रहे थे। कुछ चीजों को पहचान भी रहे थे। गोल्डन में रखा संगमरमर का ताजमहल तुमने ही तो दिया था। मेरे जन्मदिन पर। और वह लकड़ी का पगोडा, नैनीताल से खरीद कर ले आये थे। पीतल का गुलदस्ता, अखरोट की लकड़ी की जालीदार मेज, दीवार पर लगी तसवीरें पूरे कमरे में सिर्फ तुम ही-तुम थे, मैं अपनी कहाँ थी ?

आँखों में आश्चर्य लिये तुम एक एक चीज को घूर रहे थे, कुछ तो नहीं
दला था। कभी तुम मेरी ओर देखते, कभी ताजमहल को, कभी दीवाल
र लगी तसवीरों को। शायद कोई तारतम्य ढूढ रहे थे, कोई भूली बिसरी
ड़ी, "तुम खुश हो न ?" तुमने अपना प्रश्न फिर दोहराया।

तुम आ कर मेरी बगल मे बैठ गये। मेरा हाथ अपने हाथो मे ले लिया।
रे हाथ उस समय तुषारवत् शीतल थे। सारी देह काप रही थी। अगुलियो
हो कर कपन की एक थरथराती लहर सारे जिस्म मे व्याप गयी, 'बोलो
रू, तुम खुश हो न ?"

खुशी शायद बाजार मे बिकने वाली कोई चीज हो, जिसे जो चाहे खरीद
, तुम्हारी बात का जवाब मैं क्या देती भला ?

मेरी खुशी तो उसी दिन मौत की अधेरी वादियो मे सदा सदा के लिए
दफन हो गयी, जिस दिन मुझे मालूम हुआ कि मैं उसी अभागिन सौदामिनी,
की बेटी हूँ, जो कभी तुम्हारे पिता की मगेतर थी। चौंको मत।

मेरी बात का विश्वास न हो तो पूछ लो अपने पिता से। वे बड़ी
सहजता से कह देंगे, उस बेचारी की तो हिन्दू मुस्लिम दगे मे हत्या हो
गयी।

नही उसकी हत्या नही हुई थी अपहरण हुआ था। तुम्हारे पिता मे
इतना साहस नही कि सच्चाई कबूल सकें। इतना ही नही, उसे जब अपहरण
कर्ताओ के चगुल से छुडा कर शरणार्थी शिविर मे ले आया गया तो तुम्हारे
पिता ने उसे पहचानने से इकार कर दिया। घरवाले तो पहले ही दगे मे मार
जा चुके थे। अब उसका इस दुनिया मे कौन था। तुम्हारे पिता के सिवा ?
उसके बाद सौदामिनी पर क्या बीती, शायद तुम्हें मालूम है तभी तो तुम
एक बार मेरी माँ का पता पूछ रहे थे, मेरे पिता के विषय मे पूछ रहे थे।

मजबूर हो कर उसे अपने शरीर का सौदा करना पड़ा और जब ~ौर
पर, तो स्मगलरो के गिरोह मे शामिल हो गयी। यह सब मुझे पहले नहीं
मालूम था, वरना तुम्हें कभी पास न आने देती। यह सब मुझे माँ के मरने
के बाद पता चला, उनकी डायरी पढ कर।

माँ के विषय में तुम्हें मालूम हो चुका था। उसके बावजूद तुम मुझे प्यार करते रहे, मुझसे विवाह करने को तैयार थे। सचमुच यह तुम्हारी उदारता थी। तुम्हारी उदारता की मैं सदा से कायल रही हूँ लेकिन लेकिन तुम्ही बताओ, जिस घर में मेरी माँ को जगह नहीं मिल सकी, उस घर में भला मैं कैसे सहज हो पाती ?

मेरे प्रश्न का उत्तर शायद तुम्हारे पास भी नहीं !



सारी रात हवा/शान्ता सिनहा

हवा का हाथ मेरी पेशानी पर है—हवा, आज तुम मुझे रोको मत ! मुझे जो कुछ कहना है, कह लेने दो। आज की रात का दर्द बड़ा अजूबा है। यह दर्द उस औरत का है जो मेरे बाहर नहीं, भीतर है। कल मैं पूरी तरह आज़ाद हो जाऊँगी तब तुम मुझे जो चाहे कह सकती हो मैं हवा की फिसलन अपनी पेशानी पर महसूस कर रही हूँ—नम, शीतल, हाँ तो, मैं कुछ कह रही थी न ?

□ शांता सिन्हा

सारी रात हवा

जहाँ रोशनी का अंतिम पड़ाव खत्म होता है। वहीं हवा का हरा पीला जंगल है। दरख्त ही दरख्त। शाखाएँ पत्तियाँ और टहनियाँ

कहाँ से आती हैं ये हवाएँ—दक्षिणी, पछवा और पुरवा ?

हर रात हवा बन्द दरवाजे पर दस्तकें देती है कोई है ? अरे यहाँ कोई है ? खिड़कियों के पास बोगनवेलिया के गुच्छों में। सीढ़ियों के बीच, सूने गलियारों में किसे तलाशती फिरती है हवा ?

अंगुली का एक स्पर्श, हल्का सा दबाव भीतर के सारे प्रश्न चिह्नों को उकेरता चला जाता है बाहर, एक अंधेरे से दूसरे अंधेरे तक एक लम्बा पुल खिंच आया है, हवा में टंगा हुआ। यह कौन है। आहिस्ता आहिस्ता पुल पर टहलता हुआ जब अंधेरा मुकम्मल है ?

सात वर्षों में ही सब कुछ कितना बदल गया, सुदीप ! पलंग का वह हिस्सा जो तुम्हारे लिए था, वहाँ अब अशेषा सोती है। उस तरफ वाला दराज जहाँ तुम्हारी चीजें पड़ी रहती थीं, अब सबके इस्तेमाल के लिए है। कभी कभी लगता है उस दराज को खोलूँगी तो तुम्हारी चीजें उसी तरह पड़ी मिलेंगी

अनु दी के घर में ऐसा ही है न ! कोई छू सकता है जीजाजी वाला दराज ? उनकी चीजें ?

"किसने खोला था मेरा दराज ? चाभी नहीं है गाड़ी की, चेक बुक नहीं मिल रही है भई अनु, कितनी बार तुमसे कहा यह दराज मेरे लिए छोड़ दो, लेकिन तुम्हें याद रहता है कुछ ? ए अशेषा, पानू, चिंटू—कहाँ गए सब के सब !"

जीजाजी का बोलना शुरू होता था तो बोलते ही चले जाते थे।

कितना मुकम्मल लगता है अनु दी का घर। हर वक्त गहमा गहमी, जैसे कुछ हो रहा हो बड़े पैमाने पर और जो हो रहा है वह बिल्कुल सही है। कितना खुलापन है वहाँ?

जीजाजी चाय माँग रहे हैं। नागपुर वाली दीदी आई हुई है। पलंग पर कपड़ों का ढेर लगा है। छोटे मोटे सामान बिखरे पड़े हैं – साड़ियाँ, शट-केसेज, चप्पलें पर्स, पैण्ट स्पोर्ट्स शर्ट

जीजाजी बहन की शादी की चर्चा में व्यस्त हैं—"फलाँ लड़का डाक्टर है फलाँ इन्जीनियर, फलाँ ने आई ए एस में क्वालीफाई किया है नहीं दीदी, वह लड़का हम पसन्द नहीं है। कितना 'अनस्मार्ट' दीखता है। अच्छू से साथ कोई 'मैच' है उसका?"

दीदी हँस रही हैं—"अरे कमल लड़कों का रंगरूप देखा जाता है कहीं?"

"दीदी, यही तो मैं कहती हूँ, लेकिन ये सुनते हैं किसी की?' अनु की चाय मिच करती मुस्करा रही है।

उधर बच्चे कमरों में धमा चौकड़ी मचा रहे हैं। अर्पणा पिट रही है। अनु दी भागती हुई कमरे में जा रही हैं। जीजाजी चिकू को डाँट रहे हैं। गोल कमरे में स्टीरियो बेतहाशा चीख रहा है।

अर्पणा ने करवट ली है। एक दो शब्द अनुच्चरित। शायद वह कोई सपना देख रही है मैंने ललाट पर झुक आए बालों को धीरे से समेट दिया है।

तुम्हारे पास अगर एक छोटी बच्ची भी हो तो तुम्हें अकेलापन महसूस न होगा। यही एक पहचान है, जो तुम्हारे तमाम अजनबीपन को सोख लेगी या कुछ है जो तुम्हें भरमाए रखेगा मकड़ी के जाल की तरह। तुम्हारे भीतर एक दरवाजा खुल सा जायगा, जो तुम्हें कहीं भी ले जा सकता है उस बच्ची को खातिर। जब चाहे तुम बचपन के भूरे सपने दिनों में प्रवेश कर सकते हो। जहाँ जिन्दगी बिल्कुल आसान है, खाली सड़क पर घूमने की तरह।

गया है, जो तुम्हारे लिए था और
॰ ।१ या बाहर जो कुछ है, मेरा नहीं
॥ से परे। साबुत और मुकम्मल।
॰१११ एक बार फिर खाली हो जाएगा।

को मैंने एक बार फिर अपने हाथों
लिए तैयार किए गये कागजात। कल
उनके हवाले कर दूंगी। कानून
तक साबिक-दस्तूर। परम्परा की
गैरवाजिब ढंग से जुड़े रहने का
की तरह रिसता रहा था, उससे
ी मुकम्मल ढंग से जिया नहीं
१९ रिरियाता जा रहा था—उसका

॰ जो कुछ शेष रहेगा, वह मेरी
लिए। उस पर सिर्फ मेरा अधिकार
ो होता है।
रही हैं—अंधेरे में, सुनसान
रही हैं जो अपने में गहरी रात
र इलाकों की तरफ बढ़ रही हैं।
अंतिम 'शो' के बाद अपने अपने
॰ भी नहीं होते। मात्र एक
॰ या मकड़ी के जाले की तरह,
की तरह
म मैं रहती हूँ मेरा नहीं है।
अपना घर कैसे कह सकते हो?
।१०। के घर और किस्म के
शराब की तरह। यहाँ तुम

अपनी पोशीदा बातो को खुली हवा मे छोड सकते हो। उसके बाद, अपने शरीर के हल्केपन का बोध तुम्हे गुब्बारे की तरह आसमान की तरफ ले जाएगा, जहा सितारो की बेपनाह मंजिलें हैं। या फिर बहुत नीचे जहाँ पशु से लेकर इन्सान तक की यात्रा कर सकते हो। यात्रा का चमत्कार तुम्हें अपने आप म समो लेगा। अगर तुम एक कुशल शिल्पी हो तो तुम कोणार्क का निर्माण कर सकते हो या खजुराहो का, नितांत मौलिक ढग से।

अम्मा बाबू के कमरे मे सन्नाटा है। ये बाबू की बीमारी के बाद के दिन हैं, जब खतरा टल जाने के बाद भी दहशत सी बनी रहती है। कितने निरीह दीखते थे बाबू! जैसे उनके भीतर की तमाम मंजिलें सुनसान हो चुकी हो। ऐसा पहले किसी न देखा था? मैंने तो और भी नही। दफ्तर के लम्बे उबा देने वाले घटे, फाइलो के जगल, मीटिंग पार्टिया क्लब—इनसे परे भी बाबू को देखा जा सकता था? कभी अमेरिका जा रहे हैं, कभी बैंकाक, कभी भूटान हर समय व्यस्त।

कभी कभी मुझे भी लगता था, जहाँ मेरा एकात जमा है, बाबू पहुँच भी पाते हैं या नही। मैं भी चकमे मे आ जाती थी। इस सफाई से बाबू हर दर्द को अपने भीतर जज्ब कर लिया करते थे।

बाबू मेरी जिंदगी के लिए एक ढाल बन गये थे और मैं सुदीप, तुम्हारे हर आक्रमण से बचने के लिए उनका इस्तेमाल करती थी। तुम्हे यह सब अच्छा नही लगता था न? इसीलिए तो बाबू जिस दिन रिटायर हुए, मुझे लगा था इतनी बडी दुनिया मे मैं अकेली और निहत्थी हो गई हूँ। जैसे मेरा सबसे बडा हथियार छीन लिया गया हो।

बाबू के भीतर का सूनापन जो बजर धरती की तरह चारो ओर पसर गया था, उसका एक हिस्सा मुझ मे भी घुस पैठता चला गया था

उस शाम दफ्तर स लौटने के बाद बाबू क्लब नही गए थे। अकारण ही मुझे क्रोध हो आया था तब—

'अम्मा क्लब नही गए बाबू?'

"पता नहीं। कह रहे थे, मन नहीं कर रहा है बचत का बिल अब कौन देगा ? ड्राइवर भी जब तक है तभी तक न !"—अम्मा सब्जी काटती हुई बोली थी।

'तो सारा दिन घर मे रहे इसकी उसकी फिक्र करते रहें उनसे कहिए, बाहर जाएँ। लोगों से मिलें जुलें। पैसे की चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।"

मेरे भीतर एकाएक तुम्हारा चेहरा झूल आया था—सुखद अहसास से भीगते हुए। मैंने तुम्हारे उस चेहरे को दूर झटक दिया था। कितना जान लेवा था वह अहसास ! लेकिन सुदीप, तुममें इतनी सलाहियत ही कहाँ थी कि तुम किसी को कुछ दे सको। रोशनी या अंधेरा ? आग या राख ? या जिस्म का खुलापन ?

हर आदमी के भीतर एक सुरंग होती है। औरत हो या मर्द। ये सुरंगें उसे सुरक्षा प्रदान करती हैं जहाँ वह बनकाब जिन्दगी जीता है। लेकिन, कभी कभी ये सुरंगें टूट जाती हैं, किसी न किसी वजह से, और आदमी बाहर की रोशनी के रूबरू आ जाता है, अपनी आँखों को बचाता हुआ।

तुम्हारे भीतर भी तो एक सुरंग है सुदीप, । जहाँ तुम पूरी तरह सुरक्षित हो—इतनी लम्बी और गहरी है, वह सुरंग। यहाँ तुम्हारी पोशीदा बातें जमा हैं, जिनका पता सिर्फ मुझे है।

किचन मे कुछ गिरा है। मैं आवाज का पीछा करती हुई अन्दर बरामदे में आ जाती हूँ। गैस स्टोव के पास सीसे का ग्लास टूट कर फर्श पर बिखर गया है। एक काली बिल्ली कूद कर खिड़की में भागी है। मनीराम फिर खिड़की बन्द करना भूल गया है। ऐसा ही है मनीराम। हजार बार एक ही गलती करेगा। कुछ बोलो तो अम्मा नाराज—'काम रह सकते हैं मनीराम बिना ? दवाइयाँ दो मालिश करो, चाय नाश्ता यह वह। एक दिन भी तो नहीं चल सकता है उसके बिना।

बोगनबेलिया की एक टहनी खिड़की पर झूल रही है आहिस्ता-आहिस्ता। हवा के घेरे मे दो चार फूल। लाल और सफेद। मैंने हाथ बढ़ा

कर झूलती हवा को मुट्ठी में बन्द कर लेना चाहा है, लेकिन वह मेरी पकड़ से परे है। हाँ तो, मैं बाबू की बीमारी की बात कर रही थी। उनके 'अटैक' का दूसरा हफ्ता था वह। कितन सहमे, घबराये रहते थे हम लोग। किसी ने खाँसा तो अम्मा चौकन्नी—' कौन खाँसा ? ए मनोराम, रजू विनय ? बाबू तो नहीं ?"

उस दिन मौसम्मी का जूस निकाल रही थी अम्मा। बाबू न नाश्ता कर लिया था और अब तकिए के सहारे बैठे थे।

"अरे विनय, डाक्टर बनर्जी के लिए गाड़ी भेजनी है न अभी ?" अम्मा के हाथ अचानक थम गये—' कहाँ गया अख्तर ? सेन के यहाँ ब्लड रिपोर्ट भी तो लेनी थी न ? अरे अब कोई डर भय है अख्तर को। बाब सर्विस म थे तो भीगी बिल्ली बने रहते थे सब। बाब के आने की खबर सुनते जीप, गाड़ियों की भीड़ लग जाती थी, देखते थे न तुम लोग ? सर सर सर सररात रहते थे सब। आज कहाँ हैं गुप्ता साहब और दास बाबू ? सब कुर्सी की करामात है। अब कौन पूछता है प्रसाद साहब को।" अम्मा ने एक गहरी साँस खींची और खामोश हो गयी।

"चुप भी रहो अम्मा ! बाबू के लिए हम लोग नहीं हैं ? कौन सा काम नहीं हो रहा है ? ड्राइवर नहीं है तो विनय चला जाएगा।'

लेकिन ठीक ही तो कह रही थी अम्मा ? मेरी शादी तो इसी तरह तय हुई थी न। रिश्ता लाए गुप्ता साहब—' सर, लड़का इन्जीनियर है। बहुत सीधा-सादा कोई खास डिमाण्ड भी नहीं है उन लोगों की।'

मुझ जैसी साधारण लड़की के लिए इतनी आसानी से एक इंजीनियर लड़का मिल जाए—भाग्य ही है मेरा ! यही तो कहा था सब न। अम्मा ने हल्का सा विरोध किया था तो बाबू उखड़ गये थे—खराबी क्या है ? लड़का स्मार्ट है। इन्जीनियर है। घर ? घर कौन देखता है इन दिनों ? लड़की यहाँ रहेगी या पोस्टिंग पर ? भई, मुझे फुर्सत कहाँ है दौड़ने की ? देखती तो हो तुम ?

शादी के दिन भी कितने खुशनसीब होते हैं। इन्द्रधनुषी पंखों वाले।

भरे पूरे। भीड, शोरगुल, व्यस्तता के बीच रस्मो का सिलसिला शुरू हुआ था तो रात काफी बीत चुकी थी।

तुम, उन क्षणो के बीच हो कर भी नही थे सुदीप, इतना सपाट था तुम्हारा चेहरा। जैसे ताले मे बन्द हो । कुछ चेहरे होते है, जिनकी कोई चाभी नही होती। इनके भीतर घुमने के लिए किसी चोर दरवाजे का पता लगाना पडता है ।

औरतो के बीच कानाफूसी शुरू हो गई थी। कैसा दूल्हा है यह ? कुछ बोलता ही नही ! ए दूल्हा बाबू माँ ने बोलना नही सिखाया है ? शायद बहुत याद आ रही है या कुछ थक गए हैं ? अरे जरा मुस्करा दीजिए। ऐसी भी क्या बरुखी।—लडकियो की एक टोली तुम्हें घेरे थी। हँसी मजाक, ठहाके, छेडछाड, किन्तु तुम्हारे चेहरे का कसाव बढता ही जा रहा था—

"ए जीजाजी, एक गाना ही सुनाइये ! क्या ? गाना नही आता ? तो क्या आता है ?"—मनीषा के साथ सारी लडकियाँ हँस पडी थी—'एक ग्लास पानी मिल सकता है ?"—ऐसा लगा था कही दूर से कोई आवाज आ रही है। एक स्याह मौन मे घेरे स—जिसकी अपनी वर्दिशें हैं । कुछ देर बाद सारी लडकियाँ चली गयी थी। कमरा खाली हो गया था। हजार हजार आइने एक साथ चुभने लगे थे। खाली कमरे की गिरफ्त को महसूसते हम अपने-अपने अजनबीपन को थामे बठे रहे बाहर, रात बुत की तरह खडी थी। सिसकती हुई हवा का दबाव हर लमहा हावी था।

भीतर आइना चिटकता रहा। उसे आइना म जिन्दगी की हर तस्वीर धुधली और गलत नजर आ रही थी खौफनाक साँपो की तरह।

तुम्हारा घर। तुम्हारे घर म मेरी वह पहली रात थी। रस्मो का सिलसिला खत्म हुआ तो तुम कमरे म आए थ। तुम्हारे ठीक पीछे तनु थी।

यह है तनु। तनु इधर आ जाओ। माँ ने ही इस की देखभाल की थी। बाबूजी के खास मित्र थे शकर चाचा। कार एक्सीडेंट मे चाचा चाची दानों चल बसे थे। तब तनु सिर्फ चार साल की थी "

मेरी आँखें एक क्षण के लिए ऊपर उठी थीं—सामने एक चेहरा था, आस पास के माहौल से अलग। उम्र करीब बीस इक्कीस।

'सारे कमरे मेहमानों से भर हैं। कहीं तिल रखने की जगह भी नहीं। मैंने इससे कहा—"चलो यहीं सो जाओ। दो रातों से सो नहीं पाई है यह।'

कितनी सहजता से बोल गये थे तुम जैसे तुम्हारी माँ ने एक लड़की नहीं, कोई कुतिया पाली हो। मुझे सहसा अपनी 'जेनी' की याद आ गई थी। शोख, चौकन्नी, बेहद 'पोजेसिव'—किसी अपरिचित को देख कर गुराने वाली।

मैंने पलंग पर पड़ी चादर खींच ली थी और सोफे पर लेट गई थी। मेरे चारों तरफ काँटों का शहर उग आया था मुझे छीलता हुआ। बाहर, रात की गुम्बजें टूट रही थीं।

इस तरह के बेहिसाब दिन, बेमेल रातें। मैं अपना सामान उठा कर एक छोटे से कमरे में ले आई थी, जो फालतू सामानों के लिए था। रात का एक हिस्सा तुमने मेरे लिए मुकर्रर कर दिया था जो लाश की तरह पलंग के दूसरे हिस्से में पड़ा रहता। ठंडा, निर्जीव। मरे हुए चूहे की तरह। बेहद लिजलिजा। लेकिन, मैं एक मुकम्मल औरत, सुदीप। ओज भरी, प्यार के प्रदेश में आग लगा देने वाली। मेरे भीतर एक कबीली चिल्लाहट थी। दाम को बेइन्तहा आवाज़ को उजागर करती हुई।

तुमने देह की मरुभूमि देखी है सुदीप? उस के दर्द को महसूसा है कभी? बादामी मिट्टी की गंध का सोंधापन? नहीं, यह सब तुमने कभी नहीं जाना है। झूठे पौरुष का दम लेकर कब तक चलते रहोगे, सुदीप?

कहाँ है मेरे वे बच्चे जिनके लिए मैं स्वेटर मोजे और टोपियाँ बुनती होती? उन्हें सजा सँवार कर स्कूल भेजती उनके लिए टिफिन तैयार करती? एक बेडरूम बच्चों का—दीवारों पर चिपके स्टिकर्स, कॉमिक बुक्स स्कूली बैग छोटी छोटी नाइट ड्रेसेस उनके अपने खजाने रंग बिरंगे रिबन गोलियाँ अचना के पास ऐसा ही बेडरूम है न! या अनु दी के

पास। नम, गुदगुदा। बाद में, ये कमरे ही तो पुल बन जाते हैं।

बाहर, कुछ हुआ सा लगा है—एक हल्की सी आवाज। मैंने स्विच आन कर दिया है। जेनी एक चूहे का पीछा करती हुई कमरे में घुस आई है, किंतु चूहा उसे चकमा देकर निकल भागता है।

भीतर के बजाय बाहर की आवाजों को पकड़ना मुश्किल है। ये तुम्हें वक्त बेवक्त चकमा दे जाएंगी—इन दिनों यही तो होता है आवाजों का एक जंगल तुम्हारे साथ साथ चलता रहेगा, तुम्हें टोहता हुआ। हमलावर आवाजें। धारदार! तुम अगर बुजदिल हो तो ये आवाजें तुम्हें दबोच लेंगी

मैंने 'बेड स्विच' आफ कर दिया है। जेनी वापिस बरामदे में चली गई है। कमरा फिर अपनी मुतअय्यिन जगह पर आ गया है—पलंग, पलंग का तुम्हारा वाला हिस्सा, जहां अलोपा निश्चिन्त सोई है। टेबिल पर रखे कागज जिन्ह हवा सहेज रही है। बार बार। मेरे भीतर की औरत फिर चीखने लगी है।

"यहाँ रहना है तो मेरी बात मान कर चलना पड़ेगा'—जिस दिन मैं ने अपनी सर्विस की बात बताई थी, तुम कितने नाराज हुए थे, सुदीप! अवाक तुम, मुझे देखते रहे थे, जैसे मैंने अपनी औकात से बाहर की बात कर दी हो।

मैंने कहना चाहा था—"कौन सी बात सुदीप! तनु वाली ?"

तुम मेरे सारे दरवाजों को बंद कर देना चाहते थे, लेकिन मेरा भीतर की औरत लिजलिजी, मरियल और निकम्मी नहीं थी जैसा तुमने सोचा था। भीतर, आग घुंघुआती रहती था। कहीं सुकून था ?

तनु की ज्यादतियां बढ़ती ही जा रही थीं। रोज कोई न कोई हंगामा। शिकवा शिकायत—

"यह सोफा इधर कैसे आ गया ? नहीं, यह तसवीर यहां नहीं लगेगी। बेजगह लगती है। नहीं भइया ! यह सब्जी नहीं, बेसन के कोफ्ते बनेंगे नाश्ते में पराठे किसके ? बस दो चार किलो डालडा खर्च है सोनू भाभी

से पूछो खाएँगी या नही ? दो बज रहे हैं । बार बार कौन पूछता रहेगा ? गेस्ट है ? अरे, टमाटर कहाँ गए ? क्या ! बहू जी ने माँगे थे ? कहा नही, भइया के लिए हैं । बहुत मनमानी करने लगा है तू । तुझसे, शीबू, कितनी बार कहा भइया के कपडे इस बाथ रूम मे धुलेंगे । कल मोजा नहीं मिल रहा था ।' घर जैसे युद्ध स्थल बन गया था ।

धीरे धीरे मैंने तुम्हारे घर मे खाना भी छोड दिया था, सुदीप । कालेज के बाद का सारा समय अम्मा के घर पर द लगे सुख की तरह घिसटता रहता, दालानों व दुख की गिरफ्त म थर्राया हुआ ।

उस दिन खाने की टेबुल पर मेरी ही चर्चा हो रही थी—डाईवोर्स ? जब शादी नही करनी है, तब डाईवोर्स लेकर क्या करेगी ? क्या कहेगी कोर्ट मे ? वजह ? वजह बता सकेगी ? एक फिजूल का हुल्ला हंगामा, चर्चा । भई, यह इंगलैंड अमेरिका नही है न ' बाबू का स्वर कितना धीमा हो आया था । जैसे खुद को समझा रहे हों । वह फाइल के पन्ने पलटते रहे थे—"और फिर तुम समझती नहीं हो । लडकियों की शादी मे झमेला उठेगा । समझाओ उसे ।"

चर्चा । लोग जान नही रहे हैं क्या हो रहा है ? तुम्हारी बदली हो रही है । तब ? कहाँ जायेगी वह ? उसी घर मे ? वह वहाँ उसके साथ रहने के लिए तैयार नही है । सुना नहीं उस दिन ? सुदीप बाबू उसे रखने के लिए बिल्कुल तयार नही है । तब । किराये का मकान भी होगा न ?'—डोंगे उठाती अम्मा का चेहरा बुझ गया था किस किस का मुंह बंद करते फिरोगे ?'

अब तो बाबू आपकी सारी जिम्मेदारियाँ खत्म हो गयी । मनीषा की शादी भी हो चुकी । अब मेरी चर्चा भी होगी तो किसी का क्या बिगडेगा ?

उस दिन घर लौटने मे देर हो गई थी । रिकार्डिंग के लिए रेडियो स्टेशन जाना था । कालेज से सीधी मैं रेडियो स्टेशन चली गई थी । अम्मा के यहाँ भी जाना नही हो पाया था । मैंने खाना भी नहीं खाया था सारा दिन । अपने कमरे म साथ लाए ब्रेड और जैम का पैकेट खोल ही रही थी कि तुम सामने खडे हो गए थे । तुम्हारा उस वक्त मेरे कमरे मे आना अप्रत्याशित लगा था, क्योंकि यह वक्त मेरा नही था न ।

'यह घर है या वर्किंग वीमेंस होस्टल ?"—तुम्हारे चेहरे पर जो कुछ था वह इतना बेलौस, चिपचिपा था कि मैं अपना सन्तुलन खो बैठी थी—"वर्किंग वीमेंस होस्टल भी इससे कहीं अच्छा है, सुदीप। कम से कम वहाँ किसी को कैफियत तो नहीं देनी पड़ती है ?"

"ठीक है कोई और घर ढूंढ लो, जहाँ कैफियत नहीं देनी पड़े।'

अपमान और क्रोध से मेरा चेहरा लहकने लगा था—'मैं दूसरों के टुकड़ों पर नहीं पलती कि अपने लिए एक घर भी नहीं ढूंढ सकूं।"

तुम मुझे जितना बाँधने की कोशिश करते मैं उतनी ही स्वच्छन्द होती गई तुम्हारी हर चुनौती को स्वीकारती हुई। किन्तु मेरे भीतर की औरत बाँह में मुँह छुपाए सिसकती रहती। ऊपर सब कुछ सपाट सीधा। नकारात्मक हँसी के साथ सारी मिमियाहट को झटक देने की कोशिश—ऐसे में अगर मैंने कभी-कभार अपने अकेलेपन को अचना नीरज या डाक्टर विशाल के साथ बाँटने की कोशिश की तो तुम्हें या किसी को बुरा क्यों लगता रहा, सुदीप ? शायद तुम्हारी नजर में सर्विस करने वाली हर औरत पुंश्चलि है तुम पुरुष हमेशा सुरंगों में क्या जीना चाहते हो, सुदीप ? पता नहीं, तुम कभी खुली रोशनी में क्यों नहीं आते ? मुखौटा पहन कर कब तक चलते रहोगे तुम ? ओहदे और तरक्की के लिए तुम लोग अपनी पत्नियों को रिश्वत के रूप में पेश कर सकते हो। न्यू इयस ईव पर क्लबों या पार्टियों में शराब की कौंध जब तुम्हारे चेहरे को बेनकाब कर देती है, तुम्हारा भटकाव तुम्हें कहीं भी खींच ले जाता है, लेकिन तुम पर कोई अंगुली नहीं उठाता। तुम्हारा वहशीपन ओढ़ी हुई सभ्यता की ढाल में सुरक्षित है। और तुम सुदीप, एक औरत को परिभाषित रिश्ते का मोड़ लगा कर अपने साथ रखने का दावा करते हो और मैं अगर

हवा का हाथ मेरी पेशानी पर है—हवा, आज तुम मुझे रोको मत। मुझे जो कुछ कहना है, कह लेने दो। आज की रात का दर्द बड़ा अजूबा है। यह दर्द इस औरत का है, जो मेरे बाहर नहीं, भीतर है। कल मैं पूरी तरह आजाद हो जाऊँगी तब तुम मुझे जो चाहे कह सकती हो मैं हवा की फिसलन अपनी पेशानी पर महसूस कर रही हूँ—नम शीतल, हो न मैं

कुछ कर रही थी न ?

वे जुलाई के दोहरे दिन थे। धूप छाँव के बीच झलते हुए। दूर दूर तक आसमान में बादलों की नावें तिरती रहती। नीचे, जिन्दगी एक लम्बी थकान की तरफ हर तरफ फैली दीखती। तुमने मेरे जीवन में बड़े बड़े सुराख बना डाले थे, सुदीप ! उन सुराखों को भरने की मेरी हर कोशिश बेकार जाती।

बाबू का तबादला दूसरे शहर में हो गया था और मुझे अपने लिए एक घर ढूंढना पड़ा था। एक ही शहर में एक ही आसमान के नीचे, अब हमारे दो घर थे। अलग अलग। मैं घर बाहर—हर जगह चर्चा का विषय बन गई थी जैसा अमूमन हमारे यहां होता है। हर आँख मुझे खोज और शक की निगाह से देखती।

उस टूटन को कितना सहारा दिया था अर्चना ने—"चलिए जया दी, कोई 'मूवी चलते हैं' नृत्य कला मंदिर में 'म्यूजिक' का अच्छा सा प्रोग्राम है आई एम ए हाल में कला संगम की ओर से आधे अधूरे का मंचन है नीरज से कहते हैं, कल पिकनिक पर चलें। बच्चों को भी ले लेंगे लायब्रेरी चल रहे हैं न आज ? ए जया दी कल कुछ किताबें खरीदी हैं। देखिएगा ? मेरी बात मानिए, रिसर्च का काम फटाफट शुरू कर दीजिए देखा नहीं कल कांता दी ने 'सब्मिट' कर दी अपनी थीसीस। अरे, अभी से घर जा कर क्या कीजिएगा ? चलिए मेरे यहाँ। नीरज कुछ साड़ियाँ लाया है जयपुर से। दिखाते हैं। कह रहा था एक जया दी के लिए है। आपका बर्थ डे इसी महीने में है न।

'तुम्हें मेरा बर्थ डे याद है, अर्चना। मैं कोई बच्ची हूं जो तुम भी कमाल करती हो। —हँसी के बीच आँखों से दो बूंद आँसू अनायास ही उतर आए थे।

उन्हीं दिनों दिल्ली से लौटती अनु दी दो दिनों के लिए रुकी थीं। खाना खाने के बाद हम बिस्तर पर आसपास लेटे थे। अशेषा कोई कामिक पढ़ रही थी।

अनु दी की बातों का सिलसिला शुरू हुआ तो खत्म ही होने को नहीं आ

रहा था—जीजाजी, अम्मा बाबू, ननदें अंत में, वह मेरी तरफ मुखातिब हुई थी—"सुना, तुम खाना-वाना नहीं बनाती ? अर्चना कह रही थी मुझसे। कभी दो स्लाइस ब्रेड खा लिया, कभी मुट्ठी भर कार्न फ्लेक्स खा कर सो गई कभी कालेज से मूंगफलियां या समोसे तुम्हें पता है, अम्मा वहां कितनी परेशान रहती हैं तेरे लिए ?"

"अपने लिए अनु दी क्या बनाया-खाया जाए। कालेज से लौटने के बाद कुछ जी ही नहीं करता करने का", मैंने अनु दी के पैरों पर चादर डालते हुए कहा—मैं आपको दुबली नजर आ रही हूँ।"

अनु दी पल भर मुझे देखती रही थीं जैसे मेरे अंधेरे को तलाश कर रही हों—'तू उसके लिए अपने को जला रही है, लेकिन उसे कोई फिक्र है तेरी? सुना नई 'फिएट' खरीदी है जमीन देख रहा है उस दिन तेरा जिक्र आने पर कितना रोई थी अम्मा—वह तकलीफ में हैं। मैं उसे सुख नहीं दे सकी। हां, मैं, भूल ही गई थी अनु दी ने अपना पर्स खोला और हीरे की अंगूठी मेरी तरफ बढ़ाते हुए बोली थी—ब्रह्मचारी जी ने मुझे हीरा पहनने को कहा था न। अम्मा बोली इसे धूप दिखा कर धारण करना शास्त्रीजी से मन्त्र का जाप कर रही हो न ?"

मेरी आँखें दूर अंधेरे में कुछ टटोल रही थीं। कोई किसी की नियति बनाता है, अनु दी।

"ऐसा करते हैं, अशेषा को यहीं तेरे पास छोड़ देते हैं। तेरे जीजाजी भी कह रहे थे इस बार। वहां कोई ढंग का स्कूल भी नहीं है। दूसरे, यहां रहेगी तो तेरा जी भी बहला रहेगा। उसके बहाने बनाएगी तो।

"सच अनु दी ? ऐं अशेषा आओगी रहेगी मामी के पास ? खूब पिक्चर देखेंगे 'क्वालिटी' जाएंगे कितनी साफ सुथरी उत्तेजना फैल गई थी मेरी आंखों में।

"अरे जया, इस से क्या पूछती है ? यह तो "फन" है तेरी। '—अनु दी मुस्करा पड़ी थी तो झेंप गई थी अशेषा—मम्मी, बहुत बोर करती हैं आप।"

"इसके एडमीशन के लिए कल ही सिस्टर ऐन आज से बात करूँगी।

मेरे खयाल से कोई दिक्कत नहीं होगी एडमीशन में"—मैंने अनु दी को पूरी तरह आश्वस्त किया था।

अशेषा की उपस्थिति में सचमुच कों उजागर कर दिया था। भटकाव एक बिंदु पर आकर सिमटने लगा था जैसे।—मैंने धीरे धीरे अपने आपको परिस्थितियों के हवाले कर दिया था। मेरा खोया हुआ आत्म विश्वास फिर लौटने लगा था। अशेषा के लिए मैंने सुख के हर छोटे बड़े साधन जुटा लिए थे—गाडी, फ्रिज, फर्नीचर, फोन मेरा अहम् यही बहुत संतुष्ट था। दुनिया की नजर में अब मैं दया की पात्र नहीं थी

किंतु इन सब के बावजूद मुझे लगता मैं उस मलवे की तरह हूँ जो महानगर की गगनचुम्बी इमारतों और चकाचौंध के बीच उपेक्षित पड़ा रहता है। भीड और शोरगुल से अलग थलग।

मुझे अपने बिखराव का समेटना नितांत आवश्यक लगने लगा था। भीतर, मह वाकांक्षा सिर उठाने लगी थी। मैं पूरे मनोयोग से अपनी थीसीस पर जुट गई थी।

उस दिन अपने टाइपिस्ट को बुलाया था मैंने। दो चैप्टर टाइप हो चुके थे। काफी के लिए मैं किचन मे आई तभी टेलीफोन की घंटी बजी।

'आप का फोन, जया मासी।' अशेषा ने बड रूम से आवाज दी।

मैंने रिसीवर उठाया तो उधर अचना थी, "आज कालेज नहीं आई? मुझे लगा बीमार तो नहीं हैं आप?"

'मैंने आज छुट्टी ले ली थी अचना। अपने टाइपिस्ट' को बुलाया था टाइपिस्ट मुझे अच्छा मिल गया है। इस महीने में थीसीस सब्मिट' कर देना चाहती हूँ।'

चलिए, यह एक बात हुई। जया दी, मैंने डाक्टर विशाल के बारे मे बताया था आपको। वह आज आ गए है कनडा से। सुबह एयरपोर्ट जाने से पहले फोन किया था नीरज ने आपको आप बाथरूम में थी क्या कर रही हैं शाम को? आइये न खाना यहीं खाइए।"

'कहाँ ठहरे हैं डाक्टर विशाल?' मैंने निरपेक्षता से पूछ लिया था।

अभी तो, जया दी, यहीं हैं। जब तक कोई घर नहीं मिल जाता, हमारे यहाँ ही रहेंगे। यूनिवर्सिटी गेस्ट हाउस म रहना नहीं चाहते।"

"ठीक है, अर्चना। मैं आ जाऊंगी घंटे भर मे।"

सारा दिन बारिश हुई थी, और जब थम गई थी। आकाश सुनसान चौरस्ते की तरह लग रहा था। दूर दूर तक भीगा शहर, अकेलापन बाँटता हुआ। तन मन थकान स सूखे पत्तो की तरह चरमराने लगा था जैसे सदियो की थकान मुझ पर हावी हो गई हो अनिच्छा से मैंने वार्डरोब खोला तो नजर ऊपर टिक गई—मेरी एक तसवीर वधू-वेश म। बीते दिन कतरनो की तरह उडने शुरू हो गए, घु घ फैलाते हुए। हम दोनो के बीच अजनबीपन का का एहसास पूरी तरह घुसपैठता चला गया था, सुदीप। बेगाने शहर की तरह। पहचान के इलाके की आखिरी जमीन भी हमारे पैरो के नीचे स सरक चुकी थी। अनमनस्क, छितरी बदली के खालीपन को नकारने की कोशिश में मैं शीशे के सामने खडी हो गई थी।

"आइये, जया दी। बडी देर लगा दी आपने ?"—अर्चना और नीरज दोनो आगे बढ गए।

'कुछ देर हो गई। अशेषा को उसकी बुआ के घर बुलाया था। उसका फोन आया था।"

"इनसे मिलिए—डाक्टर विशाल अवस्थी। एसोसिएट प्रोफेसर हैं कैनेडा में। और डाक्टर साहब, यह हमारी जया दी। दर्शनशास्त्र मे पढाती हैं। डाक्टर बनने की प्रक्रिया मे " —अर्चना मुस्करा दी थी।

मेरे सामने एक चेहरा था—शांत शिष्ट, शालीन—चश्मे से झांकती दो गहरी आँखें, मुहाने जैसी। कितना सम्मोहन था डाक्टर विशाल के व्यक्तित्व मे।

"बैठेंगी नहीं आप ?' —गहरी गुफा से होकर जसी एक खनकती हुई आवाज आई—' हम काफी देर से आपका इन्तजार कर रहे थे।"

बातों का सिलसिला शुरू हुआ था तो वक्त कब सरकता चला गया, पता ही नहीं चला—देश विदेश, राजनीति, साहित्य ।

उस रात घर आने के बाद लगा था सुदीप, दक्षिणी हवा ने पहली बार मेरे तन मन को छुआ है, किन्तु उस एहसास को भीतर सहेजने के बजाय मैंने उसे खुले आकाश के लिए छोड़ दिया था, जैसे वह मेरी दुनिया से परे की वस्तु हो।

'आप कुछ कह रही थीं ? मैंने 'डिस्टर्ब' तो नहीं किया, आपको ?"—पाँच छह दिन बाद डाक्टर विशाल को अपने दरवाजे पर खड़ा देख मैं ताज्जुब में भर गई थी।

"नहीं, नहीं। आइए न।"

'नीरज जी ने पता किया था शायद इस बिल्डिंग में एक फ्लैट खाली हुआ है, दूसरे फ्लोर पर। मैं देखना चाहूँगा। अचलाजी कह रही थीं आप मिसेज मुखर्जी से मेरी सिफारिश कर देंगी तो फ्लैट आसानी से मिल सकता है।"

आप बैठिए। मैं देखती हूँ मिसेज मुखर्जी हैं या नहीं ? कोई दिक्कत तो नहीं हुई आने में ?"

"दिक्कत कैसी ? यह देखिए—उन्होंने एक मुड़ा हुआ कागज निकाला जिस पर कुछ लकीरें खिंची हुई थीं—' वैसे भी, मुझे जगह ढूंढने में परेशानी नहीं होती। हमेशा सही जगह पर पहुंच जाता हूँ," वह सहज भाव से मुस्कराए थे।

काफी पीकर हम ऊपर गए थे। डाक्टर विशाल को फ्लैट पसन्द आ गया था— 'मुझे टैरेस बहुत पसन्द है। वहाँ, इतना खुलापन कहाँ ?" वह काफी देर तक टैरेस पर खड़े रहे थे, जैसे हवा और दरख्तों को महसूस रहे हों।

दूसरे दिन, उनका सामान आ गया था। कुछ फर्नीचर किराए पर ले लिये गए थे। पर्दों का चुनाव डाक्टर विशाल ने खुद किया था। किचन का थोड़ा बहुत सामान अचला अपने यहाँ से लाई थीं। दो दिनों की व्यस्तता के बाद घर व्यवस्थित लगने लगा था। टैरेस पर डाक्टर विशाल ने कुछ गमले रखवाए थे, मनीप्लान्ट और जुही की बेलों वाले।

"लोनिग डाक्टर साहब, आप 'सेटल्ड' हो गए किसी चीज की जरूरत हो तो जया दी नीचे हैं ही।"

'मैं तो कह रही थी, अर्चना, यह 'किचन किचन' का झमेला बेकार था। खाना नीचे बन जाता,' उत्साहपूर्वक मैंने सुझाव दिया था।

"मैं बहुत अच्छा खाना बनाता हूँ, जयाजी। विश्वास कीजिए।"

'रियेली? कब इनवाइट कर रहे हैं आप? शुभस्य शीघ्रम, नहीं जया दी?' अर्चना बेसाख्ता हंस पड़ी थी।

"जब आप चाहें। किसी भी दिन मुझे आप लोगों को धन्यवाद देना चाहिए।"

'डाक्टर साहब, यह धन्यवाद बड़ा औपचारिक शब्द है। आई 'सिम्पली' हेट इट' अर्चना बेहद थकी दीख रही थी। वह सोफे पर सिर टेके चाय पी रही थी।

'यू आर हण्ड्रेड पर्सेन्ट करेक्ट," हंस दिए थे डाक्टर विशाल।

वे माघ के लावारिस दिन थे। न इधर के, न उधर के। आसमान शुभ्र लगता था। सपाट। नीचे, हवा छोटी बच्चों की तरह उछल कूद मचाती रहती। मैंने थीसीस सब्मिट कर दी थी और ढेर सारा वक्त फिर पास सरकने लगा था। कालेज के बाद का सारा वक्त मैं घर पर ही बिताती या अशीपा के साथ कहीं निकल जाती। कोई मूवी' काफी हाउस या विण्डो-शापिंग। कभी बोटेनिकल गार्डन

अर्चना को स्टडी लीव ग्रान्ट हो गई थी और वह दिल्ली चली गई थी।

वे अजीब से दिन थे, सुदीप, जिनके लिए मुझे कोई शीर्षक नहीं मिलता था। भीतर बारिश तो होती थी, किन्तु इतनी नहीं कि पानी इकट्ठा होने लगे और किनारे ढहने लगे। इलाके अब भी उसी तरह सुनसान थे तुमने मुझे रिश्तेदारों के बीच भी बदनाम करना शुरू कर दिया था, सुदीप। किन्तु तुम्हारे परिवार में हर व्यक्ति मुझे सहानुभूति की नजर से देखता था बाबूजी, बड़े भइया, भाभी तुम भाइयों से बहसें करते। अपने बचाव के लिए झूठ का सहारा लेते, किन्तु तुम्हारी हर दलील लचर लगती तनु

के लिए लडके ढूढे जाते। मामला तय होता तो तनु बडी सफाई से अपने आपको निकाल ले जाती।

वहाँ कुछ होने की सम्भावना नही के बराबर थी। मैंने अपने आपको पूरी तरह परिस्थितियो से काट लिया था। जो कुछ शेष था उसे नए सिरे से गढने के प्रयास मे मैं अपने आपको नए अर्थों—नए सन्दर्भों से जोडती चली जाती थी। बाहर, कोई गाडी रुकी है। श्रीवास्तव साहब क्लब से लौटे होगे। शनिवार की रातें तो अपनी होती हैं। यहाँ वक्त की कोई बन्दिश नही होती।

डाक्टर विशाल हर वक्त व्यस्त रहते थे। उनके लेक्चर शुरू हो गए थे। देर रात तक लोगो का आना जाना लगा रहता था। कभी कभी किसी चीज की जरूरत पडती थी तो फोन कर दिया करते थे, "जयाजी, दूध होगा क्या काफी के लिए? कुछ लोग आ गए हैं क्या कर रही हैं शाम को? आइए न। देखिए, मैं कैसा खाना बनाता हू एक धुली 'शीट' होगी क्या? एक 'गेस्ट' आ गए हैं?"

मैं अक्सर चाय नाश्ता बना कर ऊपर भेज देती या कोई नान वेज डिश। एक सुखद एहसास की अनुभूति, जो मेरे लिए नितान्त अजनबी थी भीतर सुगबुगाने लगी थी। मुझे लगता था मैं खण्डो मे जी कर भी मुकम्मल जिन्दगी की मालकिन हूँ। मेरे भीतर की औरत को कही सुकून मिल रहा था, लेकिन बाहर खामोशी थी। खामोशी, जिसे मैं किसी के साथ भी बाँटना नही चाहती थी। कभी कभी सन्नाटा भी कितना वशीभूत होता है जिसे छूने मे भी डर लगता है।

'जया मामी, विशाल अंकल पूछ रहे हैं आप घर मे ही रहेंगी?"

'हाँ क्या बात है?

'वह आ रहे हैं नीचे।"

'मैं कही नही जाऊँगी। कह दो अंकल से।"

भीतर आ कर मैंने लिविंग रूम को ठीक किया। कपडे बदले और बाहर आ गई। डाक्टर विशाल लान मे खडे थे। मुझे देखा तो हलके से मुस्कराए।

"बहुत व्यस्त रहते हैं, आप ! थकान नही लगती ?"

"बोर हो जाता हूँ। कभी कभी। दखिए न, स्टूडेंण्टस घेरे रहते हैं। लेक्चर ही फालो नही कर पा रहे हैं। कैसी हैं आप ?

"अच्छी हूँ। कसा खाना बना रहा है नौकर ?"

"बहुत अच्छा। आपने अच्छी ट्रेनिंग दी है उसे। कुछ बताना नही पडता।"

'बैठिए, मैं काफी लाती हूँ। १० १५ मिनटो मे मैं लौटी तो वह एक पत्रिका के पन्ने उलट रहे थे—बहुत अच्छी काफी बनाती है, आप। वहा अपनापन कौन दता है ? आप अगर शादीशुदा है तो बगैर इजाजत के आप किसी को अपने घर भी नही बुला सकती।"

वह दूर, आसमान की तरफ देखने लगे थे, जो ढलती शाम मे एक पठार की तरह लग रहा था। 'वही मेरा एक दास्त ह—बिल। बिल रोजेन बग।" पल भर रुके डाक्टर विशाल "ऐश ट्रे नही है। मैं आपकी कार्पेट खराब कर रहा हूँ।'

'लीजिए" मैं एश-ट्रे भीतर से उठा लाई।

'पिछले साल उसका डाइवोर्स हो गया। बारह वर्ष रहने के बाद भी एक दूसरे को समझ नही सके थे वे आप इनके डाईवोर्स की वजहो को सुनेंगी तो यकीन नही करेंगी। सैंडा को शिकायत थी बिल अब उसके लिए फूल नही लाता था। बाहर, उसका हाथ नही थामता था बच्चो स बहुत ज्यादा अटच्ड था मैंने कई बार सण्ड्रा को समझाने की कोशिश की थी तो वह नाराज हो गई थी—यू आर टू मच इण्डियन।'—विशाल मुस्कराए तो लगा था, दर्द की एक लकीर चेहरे पर खिंचती चली गई है।

'कुछ भी कहें, डाक्टर साहब ? वे लोग कही अच्छे हैं हमसे। उन्हें जिन्दगी का लाश की तरह कधो पर ढोए नही चलना पडता है न ! वे जब चाहें उसे उतार कर कही भी फैंक सकते हैं, नई शुरुआत के लिए। कोई उन्हें बुरा नही कहता।"

डाक्टर विशाल सहसा उठ कर खिडकी के पास खडे हो गये थे—वहाँ से पीछे मुडकर देखा। अपनी जगह को महसूसा। चुप रहे।

"यहाँ तो आप हर जगह चर्चा का विषय बन जाएंगे। हर व्यक्ति आपको अजीब नजरों से घूरेगा, जैसे आप इस दुनिया के नहीं, किसी और दुनिया के वासिंदे हैं मुझे ही देखिए न, मैं अपनी जिन्दगी का फैसला भी खुद नहीं कर सकती। मेरा अपना कुछ नहीं है, मेरी निजी जिन्दगी भी नहीं।"

उस रात, जाने क्यों लगा था सुदीप, डाक्टर विशाल के सामने सब कुछ बगैर किसी हिचक के आराम से कहा जा सकता है।

"हम सब अपने अपने अजनबीपन में जीते हैं, जयाजी! किसी के पास अपना कुछ नहीं होता। जिसे आप अपना कहती हैं वह बाँस की तरह खोखला होता है, कुछ भी डालिए दूसरे सिरे से निकल जाएगा सुख आपके बाहर नहीं, भीतर है। 'एक्सेप्ट' और 'रिजेक्ट' करने की क्षमता में है। हम ताजिन्दगी खुद के खिलाफ चलते रहते हैं। क्या यही हमारी 'डेस्टिनी' नहीं है?'

मैंने ताज्जुब से उनकी ओर देखा था—

आप मुझसे मिलने आए हैं। यह मेरा घर है। किन्तु इस घर में कोई क्यों नहीं है? कमरे गलियारे सुनसान क्या हैं? घर का सजाव सफेद क्या है? ऐसे घर के लिए कोई नाम है उसके पास?

'क्या सोच रही हैं?' डाक्टर विशाल की आँखें मुझ पर गहरा रही थीं।

'खुद के खिलाफ चलने की सलाहियत कितनों के पास है, डाक्टर साहब? मैं इसे कायरता कहती हूँ? पलायनवादी दृष्टिकोण—स्केप।

"सलाहियत होती नहीं, पैदा की जाती है। कभी कभी उसे झपटना पड़ता है—यह कायरता नहीं बोल्डनेस है और देखिएगा, आप हमेशा सिर ऊँचा कर चल रही हैं।'

एक छोटी-सी उम्मीद जो कई महीनों से यहाँ वहाँ छितरने लगी थी, सहसा गहराने लगी थी खतरनाक ढंग से। मैं डर सी गई थी, सुदीप! आज मैं तुमसे कुछ भी नहीं छुपाऊंगी, क्योंकि मैंने कोई अपराध नहीं किया

है। बस, आँधी को अपने भीतर थाम लिया है पूरी ताकत से। अपने ही शरीर की सीमा मे कोई कब तक जी सकता है ?

तुमने मेरे ऊपर जो आरोप लगाया है उसे मैं नकारूँगी नही। लेकिन सुदीप, जिनके कक्ष खुद शीशे के हैं उन्हे दूसरो के घर पत्थर फेंकने का क्या हक है।

"आप यहाँ आना चाहती है ? अगर आप कहे, मैं अपने चेयरमैन को खत लिख सकता हूँ। वह बहुत अच्छे आदमी है। तब तक आपका 'डाक्टरेट भी हो जायगा' एक दिन डाक्टर विशाल से यूनिवर्सिटी कैम्पस म मुलाकात हो गई थी।

'मैंने कई बार अप्लाई किया था, लेकिन कुछ नहीं हुआ ? अब तो मैंने उम्मीद छोड दी है।"

"एक बार फिर कोशिश करना क्या बुरा है। जाने से पहले, आप मुझे अपना बिश दे दीजिएगा और थीसीस की एक कापी। मैं अपना रजिस्ट्रेशन पी एच डी, स्टूडेण्ट के रूप मे करवा दूगा। फाल मे आप आ सकती हैं।'

दरक्षा के बाजू मे विशाल के साथ चलते हुए कुछ दिन पहले पढी अंग्रेजी कविता की कुछ पक्तियाँ मन म कौंध गई—

'टू अडरस्टैड इज टु वाक

सजरली आन ए रोड हैविंग ट्रीज आन बोथ साइड्स

टू क सब्युअलाइज इज टु किल

टू बी क्वायट इज टु क्रिएट "

अपने आपको पूरी तरह सहेज कर आकाश के लिए छोड दिया था। शेष थी एक खुशबू जो रग बिरगी तितलियो की तरह सारे मे उड रही थी।

"आपको जल्दी नही है तो थोडी शापिंग कर लें" डाक्टर विशाल ने जे जी कार के सामने गाडी रोक दी थी

"नही, मुझे कोई जल्दी नहीं है" मैंने कार का दरवाजा खोलते हुए कहा।

"यहाँ कार पार्क करना कितना आसान है। वहाँ तो बस पूछिए मत।"

डाक्टर विशाल काउन्टर पर खड़े सामान खरीदते रहे—ब्रैड मक्खन, चीज, कार्नफ्लेक्स, मिल्क पाउडर, सार्डिन के कैन, रूमाल मैं किताबें और मैगजिन देख रही थी।

उस दिन के बाद से लगने लगा था मैं अब अर्थों में जीने लगी हूँ। कितना गन्ध भरा था वह अहसास।

गर्मी की छुट्टियाँ शुरू हो गई थी और मुझे दो हफ्तों के लिए अम्मा के यहाँ जाना था, किन्तु मेरे अस्तित्व का बड़ा सा खंड यहीं छूट गया था, जो मुझे कहीं चैन नहीं लेने दे रहा था अम्मा रोज नई नई चीजें मेरे लिए बनातीं। हर रोज कोई न कोई प्रोग्राम! बाबू दफ्तर जाकर गाड़ी भेज देते। मैं मनीषा के साथ निरुद्देश्य घूमती फिरती थी—कभी कुतुब, कभी लालकिला जनपथ, कनाट प्लेस—सब जैसे अब नए सन्दर्भों में जुड़ने लगे थे साथ एक अजीब सा एक खालीपन भीतर छाने लगा था, जहाँ हर चीज नीरस और स्वादहीन नजर आती। वर्तमान, जैसे एक नीली सफेद झील था। जड़। थिर। भीतर, किन्तु दरख्तों की भीड़ थी

दिल्ली से लौटने के बाद मैंने राहत की साँस ली थी। वह शनिवार का दिन था। डाक्टर विशाल की कई चिट्ठियाँ आई पड़ी थीं। कुछ मैगजिन। मैं सुबह जल्दी तैयार हो गई। एक स्लाइस ब्रैड लिया। खाने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। सोचा चिट्ठियाँ उन्हें दे आऊँ। ऊपर दरवाजा खुला था। डाक्टर विशाल कोने की कुर्सी पर बैठे शर्ट में बटन लगा रहे थे। बिस्तर पर कपड़ों का ढेर लगा था।

"यह क्या कर रहे हैं, आप ?"

"देखिए न किसी शर्ट में पूरे बटन नहीं हैं ?" वह झेंप से गए थे।

"लाइए, मैं लगा देती हूँ" मैंने आगे बढ़ते हुए कहा।

"यह रहा आपका मेल, डाक्टर साहब।" मैंने लिफाफे और मैगजिन उनकी ओर बढ़ा दिए।

"नाश्ता तो नहीं किया होगा! आप वाश कर लीजिए। मैं नाश्ता तैयार करती हूँ। पता दस बज रहे हैं ?"

मैं किचन मे चली गई थी। डाक्टर विशाल चिट्ठियो मे खो गये थे।

आमलेट, टोस्ट और पकौडियो की प्लेटें लेकर कमरे मे आई तो वह टरेस की ओर मुह किए खडे थे। उनका चेहरा उस क्षण अजनबी हो आया था। उन्हें अक्सर इस किस्म की चुप्पियो मे सिमटते देखा है। कभी कुछ पूछा नही। उस स्थिति को आहिस्ता आहिस्ता बीत जाने दिया है।

"आप यही थी ? मुझे लगा आप नीचे चली गयी हैं आप भी हद करती हैं, जयाजी। बहादुर तो आता ही होगा लाण्ड्री से इतनी परेशानी "

"इसमे परेशानी की क्या बात है ! टोस्ट ठडे हो रहे हैं। शुरू कीजिए न !"

"बिल की चिट्ठी आई," सहसा उनकी आवाज सन्नाटे पर तिरती सरक आई।

"क्या लिखा है ?"

"सैण्ड्रा ने दूसरी शादी कर ली है।"

"दूसरी शादी ? और बच्चे ?"

"बच्चे सैण्ड्रा के पास हैं। पता नही, बिल बच्चो के बगर कैसे रहता होगा !" अजीब सी उदासी उनके चेहरे पर झूल आई थी।

मैं बिल के बच्चो के बारे म सोचने लगी थी जिन्हे मैंने कभी देखा भी नहीं सुदीप, मेरे भीतर अजन्मे शिशुओ की आहटें फिर उजागर होने लगी थी।

'मेरे पास उनकी तस्वीरें हैं। आप देखेंगी ?" उन्होने जल्दी जल्दी अपना ब्रीफ केस खोला और एक बडा सा लिफाफा निकाला—

"यह है स्टीव। दस वर्ष का। और यह है डोना—इस दिसम्बर में आठ की होगी।"

मैंने तस्वीरें हाथ मे ले ली—गोल मटोल चेहरा। बाल बहुत सुनहरे नहीं थे, कुछ भूरापन लिए हुए। आँखों मे हल्का नीलापन। —[illegible] मन।

"इनके 'फीचर्स' भारतीय लगते हैं। नहीं ?" मन्त्र मुग्ध-सी मैं तस्वीरों को देखती रही।

"लेकिन यह कैसे हो सकता है!" डाक्टर विशाल हँस दिये थे—"इनके लिए इंडियन ड्रेसेज ले जाना है। डीना की खास फरमाइश है—टी वी पर एक दिन हिन्दुस्तानी गुड़िया देखी थी उसने—बहुत 'एक्साइटेड' हो गई थी आप बनवा देंगी ? मैं उनके माप लेता आया हूँ एक सान की थन कुछ सिल्वर ज्वैलरी बिल ने दो सौ डालर दिये हैं"

"मैं ड्रेसेज बनवा दूँगी। आप उनके माप मुझे दे दें। किसी दिन चेन का आर्डर दे देंगे लगता है आप बहुत 'अटैच्ड' हैं बिल के बच्चों से।"

वह पाइप जला रहे थे—"जयाजी, बच्चों के साथ रहिए तो बहुत अच्छी फीलिंग होती है। एक प्यार इनोसेंट फीलिंग—बिल के दोनों बच्चे बहुत प्यारे हैं खासकर डीना। जब काम से थक कर लौटता हूँ, उनके साथ खेलता रहता हूँ। सैण्ड्रा अक्सर कहती थी मैं उन्हें स्पायल कर रहा हूँ।"

"आप और बिल साथ रहते थे ?"

हाँ दो तीन वर्ष पहले बिल ने एक मकान खरीदा था। उसके एक हिस्से में मैं रहता था। बाद में जब सैण्ड्रा और बच्चे चले गये थे, बिल ने वह मकान बेच दिया था और कम्पस में मूव कर गया था।

वे बीच जून के खानाबदोश दिन थे जो बादलों के संग इधर उधर उड़ते फिरते थे। थीसीस 'सब्मिट' किए महीना भर हो गया था। अब तक 'एक्जामिनर्स' की नियुक्ति नहीं हो पाई थी। एक नया चक्कर शुरू हो गया था—कभी अपने गाइड वर्मा साहब के घर कभी यूनिवर्सिटी आफिस कुछ भी हुआ सा नहीं लग रहा था। हफ्तों से डाक्टर विशाल से मिलना नहीं हो पाया था। उनके जाने में अब एक डेढ़ महीने शेष रह गये थे और बेहद व्यस्त दीखते थे।

"लीजिए जयाजी आपका पत्र!" मैं कालेज से लौटी ही थी कि डाक्टर विशाल सामने पड़ गये थे। हाथ में एक हवाई लिफाफा था।

"कॉंग्रेट्स आपको फाल के लिए रजिस्टर कर लिया गया है। कुछ

वनाम भी लेने पडेंगे। रजिस्ट्रेशन पी एच डी के लिए ही हुआ है। जितना वे दे रहे हैं आपके रहने खाने के लिए काफी है। बस मैं तो यहा हूँ ही"

"मुझे तो विश्वास ही नही हो रहा है। सच!' उत्तेजना और खुशी से मेरा गला रुँध गया था।

आपने मेरे लिए जो कुछ किया, मैं भूल नही सकूंगी अब तक किसी ने कुछ भी नही किया था मेरे लिए। बाबू अम्मा की बात और है।'

'आप तो जयाजी, फार्मल हो रही हैं"—डाक्टर विशाल कुर्सी पर बैठते हुए बोले।

"डाक्टर साहब, जो हमेशा अंधेरे मे चलता रहा है, उसे रोशनी से भी दहशत होने लगती है। मेरी जिन्दगी मे इससे पहले कोई अच्छी बात नही हुई थी।'

'इसे सेलिब्रेट नही करेंगी आप?' हँस दिये थे वह।

"मैं काफी बनाती हूँ पहले।"

काफी का पानी गैस पर रख कर लौटी तो वह स्टिरीयो के पास खडे थे—अच्छा कलेक्शन है आपके पास गजलो का। मैं कुछ 'रेकार्ड्स' यहाँ से ले जाना चाहूँगा।"

'बेगम अख्तर और इधर महदी हसन—कोई जवाब नही है इनका इधर दोखे नही आप?"

"बहुत व्यस्त रहा इधर! मुझे अपनी किताब के लिए कुछ मैटर कलेक्ट करना था। लेक्चर के बाद सीधा लाइब्रेरी चला जाता था। फिर स्टूडेंटस आते रहते थे। अब तो जयाजी सिर्फ दो हफ्ते यहाँ हूँ। बीस जुलाई को मेरी फ्लाइट है। दस बारह दिन दिल्ली मे रहूँगा कल ही नीरजजी का खत आया था कुछ लोगो से मिलना भी है वहाँ आप लोगो को बहुत मिस करूँगा। आठ दस महीने किस तरह बीत गये, पता ही नही चला।

"बच्चो की ड्रेस बन गई है। डोना के लिए शरारा सेट और स्टीव के लिए कामदार कुरता मखमल का जैकट और चूडीदार। कल दिखाऊँगी आपको।'

"चलिए एक बड़ा काम हुआ। मैं तो बिल्कुल अनाड़ी हूँ इस मामले में।"

धीरे धीरे समय सरकता गया। मैं बेहद खामोश हो गई थी। मेरे भीतर चीखने चिल्लाने वाली तोड़ फोड़ करने वाली औरत पता नहीं कहाँ गुम हो थी? तुम्हारे बारे मे सुदीप, तरह-तरह की खबरें मिलती रहती थी— तुम तनु को हर जगह साथ लिए फिरते हो पड़ोसी तुम्हारी चर्चा करने लगे हैं तनु के लिए सो डेढ़ सौ की साड़ियाँ खरीदी जाती हैं तुम अपने नए मकान मे चले आये हो। गृह-प्रवेश के दिन तुम हजारो रुपये खर्च किये थे किन्तु मुझमे कोई भाव बोध नहीं जागता था। सब कुछ निरपेक्ष भाव से स्वीकारती चली जाती थी।

जाने से पहले, डाक्टर विशाल ने एक बड़ी सी पार्टी दी थी। पार्टी करीब दो बजे रात को खत्म हुई थी। सौ से अधिक लोग आमन्त्रित थे। जब अन्तिम मेहमान भी जा चुके तब मैंने भी जाने की इजाजत मांगी थी।

"थोड़ा रुकेंगी जयाजी? आपसे कुछ कहना चाहता हूँ।"

डाक्टर विशाल के हाथ मे अभी भी 'वाइन' का ग्लास था। आँखें जैसे अनजान सीमान्तो पर टिकी लग रही थी।

बाहर सन्नाटा था जंग खाए लोहे की तरह। अवश।

मुझे लगा था जो स्थिति पिछले कई महीनो से मुझे मकड़ी के जाले की तरह भरमाती रही थी, किसी निश्चित मुकाम पर पहुँचने से पहले पूरी तरह अश्वस्त हो जाना चाहती है

"जयाजी," वह खिड़की पास फैले अंधेरे को एकटक देख रहे थे। फिर पास आकर सोफे पर बैठ गये थे—

मैं ही बिल हूँ सण्ड्रा कभी मेरी पत्नी थी। स्टीव और डीना मेरे ही बच्चे हैं मैंने अपनी कहानी आपको तीसरे व्यक्ति की हैसियत से सुनाई थी। मैं नही चाहता था आपकी सहानुभूति और दया का पात्र बनूं और आपसे जबरन कुछ झटक लूं। नहीं यह मेरी आदत नहीं है। जयाजी एक दूसरे को जानने की प्रक्रिया मे ये बातें अर्थहीन लगती हैं मोनीगलेस सिर्फ

विशुद्ध अहम् को जानना और इसे स्वीकारना—मैं इसे ही सही मानता हूँ, इसीलिए मैंने आपको वही देना चाहा था— विशाल, जो न किसी का पति है, या था, न किसी का पिता सोचा था जिस दिन आपको और नहीं छल सकूंगा, सब कुछ बता दूगा कल, मैं यहां से चला जाऊँगा। जाना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना हमारा इन दिनो के बारे मे सोचना,"—सहसा वह चुप हो गये थे। उनके लिए वे क्षण सचमुच खतरनाक साबित हो सकते थे मैंने अपना सिर नीचे झुका लिया था।

आप यह कभी नही जान पायेंगे विशाल, कि आपका रहस्य मैं बहुत पहले जान गई थी, जब मैं आपका शावर फिक्स करवाने मिस्त्री को लेकर ऊपर गई थी।

कि, टेबिल पर पड़ी आपकी डायरी को उठा कर पढने का मोह मुझ पर बुरी तरह हावी हो गया था कि स्टीव और डीना के बालो का रग देखकर मैंने सहज ही मे अनुमान लगा लिया असलियत का । कि उस दिन बिल का नही सण्ड्रा का खत आया था, जिसमे उसन अपनी शादी की बात लिखी थी किंतु यह सब मैं आपसे कभी नही कहूँगी।

"डाक्टर साहब, मेरे पास कहने के लिए कुछ शेष नही है, किन्तु क्या वही प्यार शाश्वत नहीं है, जो एक टूटे व्यक्ति को दूसरे टूटे हुए व्यक्ति से जोडता है! ये ठुकराये, उपेक्षित, नकारे गये भू खण्ड भी कभी-कभी बीस मंजिली इमारतो का निर्माण कर सकते हैं। महानगर की तरह।"

डाक्टर विशाल अपनी जगह से उठे थे। उनका दायाँ हाथ मेरे कधे पर टिक गया था। पुरुष स्पर्श मे इतना सम्मोहन होता है। मेरे जीवन के वे उदघाटित क्षण थे हम दोनो ने एक-दूसरे को जानने की प्रक्रिया मे देखा मोमबत्ती सहसा बुझ गई। आँखें सुदूर पहाडो और उपत्यकाओ को ढूढने लगीं। अधेरी घाटियो मे तन मन उतरने लगे। स्थिर केन्द्र धीरे धीरे साफ होता गया। गन्ध और स्वेद के जुगनू चमकने लगे। हजार हजार आइने जैसे एक साथ जल उठे एक अप्रत्याशित क्षण मे कमरा फिर अपनी जगह पर लौट आया

उस रात पहली बार मैंने तुम्हें सहानुभूति की निगाह से देखा था,

सुदीप ! लगा था हम टुकडो म बट कर भी अभी शेप हैं। हमने एक दूसर को नकारा नही है, स्वीकृति की समान रेखा पर चलने मे नाकामयाव रहे हैं।

विशाल को गए महीना भर हा चुका था। मैं मोहवद्ध सी घण्टा लान मे बैठी टेरस की तरफ देखती रहती। गमले उसी तरह टरस पर पडे थे। उनमे रोपी जही और मनीप्लाण्ट की लतरा पर अनजानी सी धूप उतर आई थी वाबू 'रिटायर होकर वापस आ गए थ। मुझे घर की जिम्मेदारिया स मुक्ति मिल गई थी मैंने पास पोट क लिए 'अप्लाई कर दिया था और जान की तैयारियो मे जुट गई थी। मर 'वाइवा की तारीख भी निश्चित हो गई थी किन्तु ज्यो ज्यो जाने के दिन करीव आ रहे थे एक अजीब सा मोह मुझमे जागन लगा था। बाबू मुझे ढेर सारी हिदायतें दते रहते थे। उनके चेहरे पर अव्यक्त प्रसन्नता का भाव होता, किन्तु आँखो मे अजीब सा सूनापन फिरता रहता।

बाबू के कमरे मे खटका सा हुआ है। शायद अम्मा उठी हैं। चार बज गए हैं क्या ? पूजाघर की बत्ती जली है। सुबह के सन्नाटे को क्षय देती उनकी आवाज धूप ग ध के दरवाजे का आहिस्ता आहिस्ता खोल रही है—

मानस भज रे गुरु चरणम
दुस्तर भव सागर तरणम्

मैं उठ कर बिस्तर पर बठ गई हू। मेरे चारो ओर हवा का जगल बिखर आया है। टेबिल पर रखे कागज हवा म फडफडाते हैं मैं तुम्हे मुक्त कर देना चाहती हूँ सुदीप ! ताकि तुम एक मुकम्मल जिन्दगी जा सको। तुम्हारा जो कुछ मेरे पास है या था, उसे मैंने बहुत पहले ही तुम्ह वापस कर दिया है। केवल एक पहचान शेप थी, उसे भी आज तुम्ह लौटा रही हूँ, एक नई शुरुआत के लिए।

सुरग से निकल कर खुली रोशनी में आओ सुदीप ! जो सच है उसे पूरी ईमानदारी के साथ स्वीकारो हवा का जगल तुम्हारे चारो ओर उग रहा है। उसे अपने भीतर आ जाने दो सुदीप !

□ □

सहयात्री/उषा किरण खान

अच्छी भली मैं अपनी प्राइवेट डिस्पेंसरी में लगी रहती कि मेरे जीवन के आकाश में धूमकेतु की तरह लाला हरदयाल का प्रवेश हुआ। उसकी भाभी का इलाज मैं कर चुकी थी। मेरे माध्यम से बड़ी बड़ी लेडी डाक्टर उसकी भाभी की जान बचाने को जुट गई थीं। जान बूझकर अपने से न होनेवाला केस मैं स्वयं ले जाकर बड़ी डाक्टर के यहाँ दाखिल कर देती। इस प्रकार डाक्टरनी लोग भी मुझ पर प्रसन्न रहा करतीं और मेरा अपना यश भी बरकरार रहता।



सहयात्री

गाडी मे सब कुछ जमाकर विदा करनेवाले जाने को तत्पर हो उठे थे। कुछ विचित्र वातावरण था। एक ही कोठी मे मैं दस वर्षों से थी। वहां के सारे कमचारी अपने जैसे हो गए थे। जाने अनजाने मैंने उन्हे दुख पहुँचाया होगा। पर उनके भोले चेहरे पर मात्र बिछोह की पीडा थी, कोई व्यग्य या उपालभ नही था। मैं चुनाव हार गई थी और अब यहा रहने का कोई भी औचित्य नही था। भीतर से मैं बुरी तरह टूट चुकी थी। फिर भी जाने क्यो ये छोटे छोटे कर्मचारी मुझे अधिक दुखी जान पडते थे। मुझे छोडने कोई बडा व्यवसायी नही आया जिसे मैंने लायसेन्स या ठेका दिलाने मे मदद की थी। जिनके यहाँ मेरी नित नई पार्टियाँ चलती, जिनके साथ मैं लम्बी सुहावनी यात्राएँ करती। अपनी पार्टी के लोग भी एक दूसरे से आँखे चुरा रहे थे। एक भयानक झझावात म सबकुछ उलट पुलट गया है।

गाडी ने सीटी दी, अब खिसकने लगी है। तभी मेरा सहयात्री लपक कर चढा। दरवाजा उसने ब द कर दिया है। मैं अपने बिस्तरे पर लेट गई हूँ। मेरा सहयात्री भी अपनी बथ पर जा बठा है। मुह फेरकर आँखें बन्द कर ली हैं मैंने, एक ही झलक मे उन्हे मैं पहचान गई हूँ। 20 वर्षों से वे ससद सदस्य थे और 10 वर्षों से मैं, कभी ऐसा मौका नही मिला कि हम एक ही कम्पाटमन्ट मे साथ रहे हो। उनके लिए कोई बडी बात नही। वे विप्लवी पाषाण हृदय नेता हैं। मैं राजनीति मे उन्ही के कारण आई। ऐसे शुष्क जीवन मे जहाँ गोटियो का खेल ही महत्त्व रखता है, मैं अपना हृदय बचाकर ला रही हूँ, और क्या बचा है ? जोड तोड मे सब कुछ होम हो गया है। इस होम मे मेरे हाथ ही नहीं वरन् सर्वांग जल गए हैं। इतने छाले हैं कि अब उसी मे आनन्द आता है।

अक्सर उन्हें छेड़ती हूँ। विगत दस वर्ष बेतरह व्यस्त थी। अब कुछ दिन या फिर चाहूँ तो आजीवन मुक्त निर्बंध हूँ। कोई मुझे छेड़ने नहीं आएगा। आँखें तिरछी कर देखने की चेष्टा करती हूँ। सहयात्री बिस्तर फैला चुके हैं। अब लेटने की चेष्टा में हैं। कितने संयत लग रहे हैं। क्या अंतर है ! समय भी तो कितना बदल गया ! उनके जीवन में भी तो कितने बवंडर आए ! लगता नहीं इनपर इसका असर हो। क्या पत्थर-सी काया है, वैसा ही हृदय पाया है।

एक एक घटना याद आ रही है बात सन् 1945 46 की है। नर्सिंग होम में एक ऐसा कैदी था जिसे भारी हथकड़ी-बेड़ियों से जकड़कर रखा गया था। सिर उसका फटा था। जेल से भाग रहा था। जेल पुलिस को पता चल गया। ज्योंही दीवार पर चढ़ा, गोली चल गई। गोली तो पैरों में लगी, किंतु उतने ऊपर से गिरने से सर फट गया। उसी का इलाज यहाँ हो रहा था। सारे डाक्टर, नर्स, स्टाफ वगैरह भयभीत थे। बड़े अक्खड़ किस्म का व्यक्ति था। सुना बिल्कुल होश में ही इसने गोली निकलवाई थी। उसके विषय में जाने कितनी दंत कथाएँ प्रसिद्ध थीं। मेरा नन्हा जिज्ञासु मन एक बार उसे देखने को तड़प रहा था।

मेरे पिता एक साधारण पोस्टमैन थे। साधारण दर्जे से भी नीचे समझे जानेवाले हरिजन टोले में फिर भी हम सबसे अधिक सुखी थे। पिता जी पढ़े-लिखे लोगों के साथ उठते और स्वराज्य आंदोलन को समझते थे। हमारे शहर में समाज सुधार कार्य भी जोरों से चलता था। खादी आंदोलन भी था। ठीक मेरे घर के पास बालिका विद्यालय खुला था और पिताजी ने मुझे दाखिला दिलवा दिया था। आस पास के लोगों में सबसे अधिक उल्लेखनीय एक डाक्टर साहब का परिवार था। मैं अक्सर उनकी पत्नी के पास जाकर बैठती। उनके यहाँ आंदोलन की बातें सुनती। डाक्टर साहब घर पर दीन दुखियों की नि शुल्क चिकित्सा करते। मैं उनके सेवाभाव से बड़ी अनुप्रेरित थी। उन्हीं की प्रेरणा से मैंने प्रवेशिका पास करने से पहले ही नर्सिंग ट्रेनिंग स्कूल में दाखिला ले लिया। अभी मैं ट्रेनिंग लेकर नई नई आई थी। नर्सिंग

होम के इसी अंश मे मेरी ड्यूटी बँटी थी, आखिर मैं अपने मन को और दबा न पाई। जो नर्स भोर को उनका स्पंज करने और चादरें बदलने जाती थी उससे कहा—

"मैं भी देखना चाहती हूँ कैदी को, ले चलो न साथ।" "चलो न, देखना कैसा साहसी है विप्लवी, सारा शरीर लोहे की जंजीरों से जकडा हुआ है, फिर भी चेहरे पर मुस्कान है।"

"लोग तो कहते हैं काटने दौडता है।" मैंने पूछा। "नही रे लोग क्या कहेंगे! इसे साधारण डाकू समझकर व्यवहार तो नही किया जा सकता है न! जो ऐसा करते हैं गालियाँ सुनते हैं उसस। मुझे तो बडी बहन कहकर बुलाता है। चलो न देखना।' मैं उसके साथ चली गई। विप्लवी मानो राह मे आँख बिछाये हुए था। कहा—"आ गई दीदी माँ, बडी देर नही कर दी?"

"नही रे पगले, मैं तो थोडा पहले ही आ गई हूँ।' ऐसा कहते हुए विमला दी ने दरवाजा अदर से बद कर दिया। उसकी बेडियो की चाभी उन्ही के पास थी। कमरे क बाहर रायफलधारी जवान खडे थे। मेरी सहायता स उन्होने बेडियाँ खोल दी। विप्लवी ने सताप की साँस ली। उठकर खडा हुआ लेकिन कदम काँप रहे थे। विमला दी ने सहारा दिया। धीरे धीरे चलने कमरे के अदर चलने लगा। मैं चादरें बदलने लगी। चादर रक्त से सराबोर थी। गिलाफ भी। कितने गहरे इसके घाव थे! मेरा हृदय आदोलित हो उठा। आँखें भर आई। देश प्रेम की कैसी सजा है। इसने ऐसा मार्ग क्यो अपनाया? दूसरा मार्ग इसे क्यो नहीं पसद है? मैं मन ही मन विचारने लगी।

"दीदी, इस नई नर्स का परिचय नही करवाओगी? क्या नाम है तुम्हारा?"

"जी, चपा।' मैं हकला गई।

'वाह, क्या सुदर सुगधित नाम है, तभी तो तुम्हारे आते ही वसत का झोंका सा आया कमरे मे। खिलखिलाकर हँस पडा वह।

"अरे वाह, बडी कविता सूझ रही है तुम्हे"—घावो की पट्टियाँ बदलती हुई विमला दी कह उठी।

'ऐ दीदी कविता तुम्हे देखकर तो नही सूझी न। इस चम्पवर्णी चपा को देखा है तभी सूझी। इसे रोज लेकर आओगी न।'

'अरे, बस ? इसकी दूसरे कमरे मे ड्यूटी रहती है।" 'तो आज कैसे आई ?" उन्होने मुह फुलाते कहा—"जल्दी काम खत्म करके आई है, विशेष कर तुम्हे देखने। यह भी तुम्हारी तरह देश प्रेम की बातें करती है।"

मैं शर्म से दुहरी हुई जा रही थी। कही कुछ पूछा तो मैं क्या कहूँगी। इनके सामने मेरी जबान तालू से चिपकी जा रही थी।

'अच्छा मेरी तरह ? नहीं, मेरी तरह न होना देश प्रेमी। इसके और भी रास्ते हैं। तुम लडकियाँ ऐसी ही भली हो।' एक दुखी हँसी के बीच मुझे उन्होंने कहा।

'अरे, काफी समय बीत गया है अब दरवाजे खोलने पडेंगे।" उदास स्वर मे विमला दी बोली। उन्हे पकडकर बिस्तरे तक ले गई और सुलाया। बेडियाँ और हथकडी लगाते हुए उनके नैन भर आए थे।

देख, मैं भी पापी हूँ, प्रतिदिन जघन्य पाप करती हूँ। तुम्हे बेडियाँ मे जकडती हू।' कापती हैं विमला दी।

"नही दीदी, तुम मुझ खोलकर छोडती हो घटा, यही क्या कम है किसी को पता चलगा तो तुम्हारा भी यही हाल होगा। मैं तो पाषाण हूँ।'—एक पीडा थी चेहरे पर उनके। मैं अवश न मी खडी थी।

'चलो, चपा।"—दीदी ने कहा और दरवाजे की मिटकिनी खोलकर निकल आई। बाकी पुलिस के सिपाहो को देती हुई विमला दी का मुह विद्रूप से टेढा हो रहा था। 'बाबा, कैसा मरीज मिला है नकचढा ! सीधे मुह बात ही नही करता। जो घटो म जिद करो तो पट्टी बदलने देता है। मैं अपनी बदली दूसरे वार्ड म करा लूगी।' —विमला दी चिढकर बोल रही थी। "नहीं सिस्टर ऐसा न कहिए। भारी परेशानी है, आप ही किसी तरह मनज करती हैं दूसरे तो तुरत भाग जाते हैं।' एक जवान बोल उठा।

मैं चकित थी। क्या व्यापार है। फिर भी तेज तेज कदमो से जाती विमला दी का अनुसरण करती चैम्बर तक चली आई।

मेरी दृष्टि के प्रश्न को विमला दी ने पकड़ लिया था। एक फीकी दद भरी मुस्कान होठो पर रेंग गई। टी पाट मे उठकर पत्ती डाली और डब्बे से गरम पानी उसमे उडेल दिया। टी पाट ढँककर कुर्सी पर निढाल सी बैठ गई।

"चपा, तुम्हारा काम तो हो गया वाड का ?"

"जी, हो तो गया पर एकाध चक्कर लगाने हैं।"

"चाय बना लो, फिर जाना।"

मैं चाय तयार कर बैठ गई थी। "तुम कुछ पूछना चाहती हो न उस विप्लवी के बारे मे?" उसके प्रति मेरे व्यवहार म अन्तर

'नही दीदी, मैं सब कुछ समझ गई हूँ। कुछ बाकी नही है समझना।' —मैंने उनकी बात बीच म ही काट दी। चाय पी और उनस विदा ले वाड मे चली गई। मेरा मन कहीं लग ही नही रहा था। घुटन महसूस हो रही थी। कैसा भोला, सलोना चेहरा है उस कैदी का। क्या सचमुच इतना खूंखार है कि उसे पागल की तरह बेडियो म जकडकर रखा जाए? उसे कितना कष्ट है? जिदे गहरे घाव स रक्त रिसते है। फिर भी उसकी आँखें उज्ज्वल निरभ्र आकाश की तरह दीप्त हैं, उनम निराशा के बादल नही, आशाओ के सितारे झिलमिलाते है।

एक गहरी पीडा का अनुभव करती है चम्पा। कलाईघडी पर दृष्टि जाती है। बारह बज चुके हैं। भोजन की घडी आ गई। दो घटा की छुट्टी होती थी। साइकिल म घर जाना, खाना खाकर आना। प्रतिदिन वह मन से चल देती किन्तु आज मन बनाते था। जाना तो था ही, भूख स अतडी ऐंठ रही थी और रास्ते म बालिका विद्यालय स कृष्णा का भी लेना था। मैं मन मारकर उठी। साइकिल लिया। पैंडल पर पर रखकर उचक कर चढ गई और उड गई हवा म। सुनसान रास्ते का भय आज व्यापा ही नही। मडिकल कालेज हास्पीटल के पिछवाडेवाले चनारों मे होकर तेज तेज पैडिल मारती मैं स्कूल पहुँचती, कृष्णा को लेती, फिर अपने घर की देहरी

तक पहुँचती। सूने बँसवारी का खौफ घर की देहरी पर पहुँचते ही समाप्त हो जाता। नर्स होने के बाद मुर्दों से डर जाता रहा है। जीवित शोहदों-लफंगों का भय मात्र बाकी है। तालाब के किनारे एक बड़ा सा कब्रिस्तान, कब्रिस्तान के पास दरगाह है, किसी सूफी मिरजा खाँ की। इस तालाब के किनारे अधिक दिन नहीं बीते थे हम भरे भाई बहन पनियाला तोड़ने आया करते थे। लेकिन यौवन के आगमन के साथ ही हृदय की धड़कनों ने स्वयं ही वर्जित कर दिया मुझे। फिर अस्पताल से लौटती हुई दरगाह पर बैठे छोकरों की अनर्गल फिकरेबाजियों ने और भी डरा दिया था।

लेकिन उस दिन स्कूल पहुँचकर ही सोचने का क्रमभंग हुआ। कृष्णा खड़ी थी। उसे ले घर गई तो अनमनी सी थी। रत्ना भोजन की थाली आगे खिसकाकर उठ गई थी। मैं चुपचाप खा रही थी। कृष्णा चुप बैठ नहीं सकती। मुझे कई तरीकों से तंग किया बोलने को। मैं वसी गुमसुम रही, विप्लवी की बात सोचती हुई। मेरा चन बिल्कुल खा चुका था।



विमला दी के प्रसव का दिन निकट आ रहा था। उन्हें मटरनिटी लीव मिलनेवाली थी। सिस्टर के पास उन्होंने मुझे विप्लवी के पास रहने की सिफारिश की थी। सिस्टर का बुलावा आया। सिस्टर अत्यंत कठोर प्रसिद्ध थीं। हम सब नर्सें उनसे डरतीं। नियम का पालन बड़ी कड़ाई से करती थीं। मुझे देखकर पूछा— 'तुम भी रिवाल्यूशनरी का चार्ज लेगा ?

जी सिस्टर।

'ऐसा नईं, कोरने सकेगा ? बोहुत खड है वो।"

"कर लूगी मैं।' आंख नीची करती हुई मैंने कहा।

'ठंडे दिमाग की लड़की है सिस्टर, यह जरूर मनेज कर लेगी।'— विमला दी ने कहा।

"आल राइट तुम करेगा। भावहीन सिस्टर ने आज्ञा दी।

मैं विमला दी के साथ बाहर आ गई। मन मे लड्डू फूट रहे थे। पर विमला दी के सामने प्रकट कैसे करती ?

धीरे धीरे मैं विप्लवी मे घुलती गई। सोमद्र के अच्छे स्वभाव की चर्चा करके उन्ह कई सुविधाएं प्रदान करवाई। पत्रिकाएं पढ़ने को उन्हें [illegible] लगी। मुझे भी उनका साहचय अधिक मिलने लगा। मैं ही [illegible] सुनाती। कई खबरो पर वे टिप्पणी करते। मुझसे पूछते कि "[illegible] खून नहीं खोलता, चपा ? कब तक हम चुपचाप [illegible] विदेशी छाती पर मूग दलते रहेंगे ?" बातें करते-[illegible] उठते थे। मैं अभिभूत सी सुनती रहती। अपने मन [illegible] सराहना का बीज जमा चुकी थी। समाज-[illegible] प्रति प्रतिबद्ध थी, मैं, सोमद्र के क्रातिकारी [illegible] मुँह खोल कर उत्तर देना तब न पड़ता।

युवा क्रातिकारी की सारी भगिमाएं [illegible] से सोमेद्र की ओर ताकती रहती। अचानक [illegible] होता। "क्या देख रही हो चपा इस तरह ?"

"ऊँ उहूँक—कुछ नही।" [illegible]

"मेरा सिर दुख रहा है [illegible]

"ये सब क्या समझते हैं, फालतू ? मैं इन चोचलों को खूब समझता हूं। हिफारीट वगैरह वगैरह।"

मैं उदास, स्तब्ध सुनती रहती। सहसा वे स्वयं स्वाभाविक हो जाते। कहते—'अरी चपा, आओ जरा मेरे पास, तुम भी क्या सोचती होगी, किस पागल कैदी से वास्ता पड़ा है।"

"नही तो लेकिन आप इतने उग्र क्यों हो जाते हैं ? डाक्टर मुझे डांटे तो, अगर आपको कुछ हो गया तो ?"—मैं हँसकर कहती। मेरा हाथ पकड़ कर सीने पर रख लेते और आंखों म आँखें डालकर कहते—'नही, कुछ नही होगा, चपा जो है मेरे पास।'

'उस दिन आपको ज्वर हो आया था न ? उत्तेजना बड़ी खराब चीज होती है, पास चाहिए हर बीमार को।"

मैं कहती—"बस, बस, शुरू कर दो न, नर्स वाली सीख छोड़ो।"—अब वे मेरे हाथ अपने होठों से छुआने लगे थे। मैं आँखें बन्द करके सुख लूटा करती। मेरे व्यवहार से सोमेंद्र का विप्लवी चरित्र कोमल हुआ लगता। अब वे राग रंग की बातें करते।

कालिदास के नाटक की कथा रस ले लेकर मुझे सुनाते। मैं उनके निकट खिचती चली गई। उनकी लच्छेदार बातों के जाल मे मैं बुरी तरह जकड़ गई थी। ऐसा हो गया कि स्वयं समर्पिता हो गई। मुझे उनके प्यार ने विवश कर दिया था। कभी नही सोचा कि मैं समाज की तिरस्कृता हरिजन कन्या हूँ और विप्लवी सोमेंद्र सर्वोच्च ब्राह्मण कुल का दीपक है। सावन का मौका बहुत याद आया। मुझे भाता हुआ सोमेंद्र कहते— काश, मैं सदा बीमार रहता और तुम इसी तरह तीमारदारी करती रहती।"

"क्यों, तुम्हें देश के लिए कुछ नही करना क्या ?"—मैं पूछती।

"नही जी मैं तुम्हारी खातिर दूसरा रास्ता चुन लूंगा, उनकी सारी बातें मान लूंगा।"

मैं भोली शरीर और मन से न्योछावर हो जाती। भोग का सुख दूना हो जाता। निश्चित साए पड़े सोमेंद्र कितने प्यारे और निर्दोष लगते ! मैं ईश्वर से सौ जन्मों तक भी शरीरों से न्योछावर होने का वर मांगती मन ही मन।

इन्हें कितना ध्यान है। मैं स्वयं को बड़ी भाग्यशाली मानती कि एक खूखार माना जाने वाला क्रांतिकारी मेरे प्यार के कारण बदल गया। अपने आप मुझे सम्मोहित करता था। लगता भेद कहीं मेरी प्रसन्नता से खुल न जाए। मैं नर्सों से प्राय कतराई रहती। सहेलियों से आँखें चुराती। घर पर भी गुम सुम रहती। मेरे मन में दहकते शोलों का प्यार छुपा था। मैं आपसे आप बड़ी हो गई थी, महान् प्रेमिकाओं की सूची में अपना नाम स्वयं अंकित कर लिया था।

अस्पताल की पूरी व्यवस्था मुझसे प्रसन्न थी। मेरे कारण रोज की चख-चख समाप्त हो गई थी। दूसरे दल के नेताओं से सोमेंद्र की वार्त्ता चल रही थी। सब कुछ सामान्य था। तभी मानो मुझे किसी ने तोप के मुंह पर बांध कर उड़ा दिया। इस धमाके ने, मेरे हृदय के, मेरे तथाकथित करियर के चिथड़े चिथड़े कर डाले। अखबार जो मैं लाती उसे सोमेंद्र अपने हाथों में लेते उलटते पुलटते, कुछ स्तम्भ पढ़ते, फिर मुझे पढ़ने को दे देते। मैं जोर-जोर से पढ़कर सुनाती।

मुझे अभी भी बिल्कुल नहीं समझ में आता कि उस पत्रिका में किस प्रकार संदेश लिखा गया था जो सेंसर करने वालों की निगाहों से बच निकला। उस दिन सुबह के नाश्ते के बाद ही से उनकी प्यार भरी बातें होती रहीं। दोपहर को कुछ नेता आनेवाले थे उसके पहले ही कपाट बन्द करवा लिये थे उन्होंने। मैं तो यंत्र चालित पुतली थी। उनकी इच्छा को अपना धर्म समझती थी। उचित अनुचित का विचार करना हास्यास्पद जान पड़ता था।

उन्होंने मुझे भरपूर प्यार किया था। फिर सो गए थे। मैं भी स्टाफरूम की ओर चली गई थी। फिर नेतागण आ गए थे। बातें होती रहीं। शाम हो गई थी। शर्त्त पर इन्होंने हस्ताक्षर करना मान लिया था। नेतागण खुशी खुशी चले गये थे। मैं आई तो इन्होंने लन्दन जाने की इच्छा प्रकट की। मैंने बेड़ियां खोल दीं। कहा था—"अब तो मैं कल शर्त पर हस्ताक्षर कर दूंगा, तुम प्रतिदिन के कष्ट से मुक्ति पा जाओगी।" "क्या बात करते हैं कष्ट आपको है न! हां, मैं आपको कष्ट देने की पीड़ा से बच जाऊंगी सच।"

"तुम कितनी प्यारी हो, मैं तुम्हें कभी नही भूलूगा"—कहकर मुझे आलिगन मे कठ्ठान बाँध लिया और माथ पर एक चुम्बन अकित कर दिया।

"क्या मतलब मुझस अलग जाएँगे क्या ? भूलूगा शब्द किस अथ म कहा आपने ?"—मैंने उनसे छूटते हुए कहा।

"अरे, तुम तो बुरा मान गई, अपनी प्रिया रस को नही भूलूगा। वा" को तो मेरी सगिनी हो जाओगी न। " ठहाके के बीच सामद्र न मेरे गालो का चुटकी भर लिया और लपक कर बाथरूम म वे घुम गए।

मैं कुर्सी पर बठी मीठे सपना मे खो गई थी। अचानक 8 की घटी बज उठी। मैं सचेष्ट हुई। क्या हुआ अब तक सामद्र निकले नही। साढे 6 बजे घुसे थे बाथरूम म। अन्दर स नल चलने की झर झर आवाज आ रही थी। पाँच मिनट तक मैं प्रतीक्षा म और बठी रही। मेरा हृदय बडे जोरो से धडक रहा था। आशका का भूत मुझे डरा रहा था। मैं दरवाजे तक पहुच चुकी थी। दस्तक दिया होले स। कोई प्रतिस्वर नही आया। मैं अनुभव कर रही थी जलधार की अनवरत आवाज आ रही है कोई व्यतिरेक नही। मैं जोर-जोर स दस्तक देन लगी। कोई प्रत्युत्तर न पाकर मैं नाम लेकर पुकारने लगी। आवाज मेरी चीख मे बदलने लगी। मेरी आवाज ऊँची गई होगी तभी तो बाहर का गाड दौड कर चला आया। मेरे चेहरे को देखकर वह सब कुछ समझ गया। एक व्यक्ति कॉटेज के पीछे की ओर दौडा। फिर तो बात साफ हो गई थी।

व टीलटर टूटकर नीचे गिरा हुआ था। उसी रास्त सोमेंद्र फरार हुआ। मुझे सिपाहियो ने घेर रखा था। मेरा मस्तिष्क शून्य था। थोडी ही देर म पुलिस और अस्पताल क अधिकारी पहुँच चुक थे। मुझसे प्रश्न पूछे जाने लगे। मैं तो निर्वाक थी। अपनी ओर से सोचने को कुछ था ही नही कहने को क्या बाकी था। लेकिन अधिकारियो के मशीनी प्रश्नो का उत्तर देना ही था। मेरी हालत अत्यन्त दयनीय थी। चूकि बाहर दरवाजा खुला था और मुह पर सशस्त्र सनिको का पहरा था सो मैं बच गई थी। नही तो मैं भी जेल भेज दी जाती। फिर भी मुझे घर नही आने दिया गया। नर्सेस होस्टल

में रहने की अनुमति मिली। मैं अवसन्न थी। मेरी आयु के कारण भी मुझे तत्काल कुछ कहा नहीं गया। लेकिन उस घायल कैंगी ने मेरा कसा विश्वासघात किया था। दुख और पश्चाताप म मैं बिखर रही थी। मरे कुकृत्यों के ब र मे किसी को पता नही था। कि तु ऊपरवाला जानता है मैं घोर लज्जित थी। यौवन का प्रथम विश्वास खडित हो गया था।

मैं अभागी अपनी पीडा का खुला प्रदर्शन भी नहीं कर सकती। दूसर दिन पता चला कॉटेज के पीछे एक कार लगाई गई थी जो सोमेंद्र को लेकर भागी। मन ही मन प्रशसा की मैंने उसके धैर्य और साहस की। कुछ भी हो वीर है। धीरे धीरे क्रोध और नफरत का ज्वार बढने लगा। मैं हावन-विश्लेषण का विवश हुई कि क्यों वह मुझ से सारी योजनाएँ छुपाता रहा। मैं इस निष्कर्ष पर पहुची कि उसे मुझ पर इतना विश्वास नही हुआ था जिसस मुझे भी योजना म शामिल कर लेता। सोचकर गहन पीडा म डूब गई।

सारा शहर, आसपास का इलाका छान मारा गया, सोमद्र नहीं मिला। जाने कहाँ गायब हो गया था। अनेक कोशिशो क बावजूद मैं नौकरी से हटा दी गई मेरी कोई सिफारिश काम नही आई। मैं भी तैयार बैठी थी। समझ गई थी अब मेरा गुजारा यहा नही है। मैं अपन घर आ गई थी। घर का वातावरण दहलानेवाला था। सब मुझसे कटे-कटे थे। पिताजी टोकते भी नही। ऐसा लगता सब भयभीत हैं। पुलिस की नजर हमारे घर पर थी। उन्हें शक था कि मैं क्रातिकारियो स मिली हुई हूँ। मेर छोटे से मिट्टी के घर आँगन के चारो ओर लबी-लबी घासो का सिलसिला था। वही प्राकृतिक परदे का काम करता था। घर ओसारे मे बास की खपच्चियो का मचान गडा था। पुरानी छीट और पक्के वायल की साडियो का सु दर ढग मे सिला हुआ खोल ऊपर स नीचे तक इस तरीके से बिछा हुआ था कि विक्टोरियन डिजाइन की पलग सज्जा याद आ जाये। यही गरीबी के ठाट थे। मचान पर मैं लेटी या बैठी रहती



गाडी बडी तेजी से चली जा रही है। नीद मुझसे कोसो दूर है। सहयात्री भी करवटें बदल रहे हैं। क्या इ होने भी मुझे देख लिया है ? अकेले इस कूप

मे हम दो ही हैं। बाहर रिजर्वेशन स्लिप मे नाम देखा ही होगा। वर्तमान परिस्थितियो मे हम दोनो सम धरातल पर थे। यह बात और थी कि वे नेता थे और नेता कभी चूकता नही। मैं साधारण योग्यता तथा प्रबल सामर्थ्यवाली समद सदस्या। तब भी कोई न कोई सूत्र कभी एक था, इन्हें याद नहीं। ऐसे कितने कोमल प्रसग इनके जीवन अध्याय मे जुड़े होगे।

सबके खुशियाँ छलकती थी, देश आजाद हुआ था। अब हमारी अपनी धरती का परायापन हम छीलेगा नहीं। हमारे पुराने विद्यालय मे एक बड़ा समारोह था। बस तो सपूर्ण देश एक पाठशाला बन हुआ था किन्तु मैंने अपने स्कूल जाने का निर्णय ही लिया। छात्राओं द्वारा समारोह हो रहे थे। ड्रामेटिक क्लब की सेक्रेटरी भारती मेरी क्लास फैलो थी। अब वही शिक्षिका हो गई थी। मेरे पास आकर बैठ गई वह।

मैंने उससे पूछा— 'कोई मुख्य अतिथि भी आ रहे हैं ?'

'हाँ, हाँ, तब कैसा समारोह ? आ ही रहे हैं ?'

"कौन ?"

'वही, प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सोमेन्द्रनाथ।"

मेरा कलेजा मुह को आ गया, हाथ पाँव ठंडे पड़ने लगे। तभी शोर और गहमागहमी बढ़ी। और, मुख्य अतिथि फूलो से लदकर मेरी पार्श्व की कुर्सी पर बैठ गए। प्रधानाध्यापिका ने उन्हे बिठा दिया था और स्वय अन्य अतिथियो को लिवाने चली गई थी। मैं अपना विवर्ण मुख दूसरी ओर फेरकर बैठ गई थी।

छोटी बडी लडकियाँ स्वतन्त्रता के इस वीर सैनिक को मालाएँ अर्पित करने जुटी हुई थी। सोमेन्द्र अपना प्यारा तिरंगा झडा लहराते उठ चुके थे। उत्साह की लाली उनके सुन्दर मुख को रंग गई थी। साँवले रंग के साथ लाल रंग का ऐसा अद्भुत सम्मिलन हुआ देखा नही गया। झडा गीत और राष्ट्र गीत जो मुझे सिहरा देने को काफी था निष्प्रभाव हो चुका था। मैं सारा उत्साह भूल गई थी, खिसकने की राह ढूढ़ रही थी। राह मुझे मिल

गई। जब सब लोग जलपान में जुटे थे मैं चुपके से खिसक आई। घर खाली था। खालीपन मुझे पसन्द था अभी।

मैं उठी, स्टोव जलाकर केतली में चाय का पानी चढा दिया। केतली में पानी खोलने लगा। पत्ती डालकर केतली उतार दी। तभी एक कार रुकी। मैंने उधर ध्यान ही न दिया। थोडी देर में घर के गिर्द जमी घास के जानी पहचानी छाया दिखी। छाया अन्दर आकर खडी हो गई। उसके पीछे भी कुछ लोग थे। पीछे मुडकर उन्हें लौट जाने को कहा, ऐसा लगा। मैं अवाक् हाथों में कप प्लेट लेकर खडी थी। 'क्यों ऐसे क्यों खडी हो चपा, मुझ पर क्रोध है क्या ?"—हँसते हुए सोमेन्द्र अत्यन्त सहज भाव से कह रहे थे।

मैं निर्निमेष उन्हें देखे जा रही थी। घायल कैदी का साँवला पीला चेहरा सुन्दर गुलाबी भरे मुख में बदल गया था। भरे हुए बदन पर श्वेत धवल पाजामा कुरता, काली बंडी और सुन्दर चर्म उद्योग की काली चप्पल मोहती थी।

मेरे चिबुक को अपनी तर्जनी से उठाते हुए कहा—"मुझ पर विश्वास नहीं आ रहा न! मेरी आँखों में देखो तुरन्त विश्वास कर लोगी।" जाकर मैं उनके सीने से लग गई।

सिर सहलाते हुए उन्होंने कहा—"चाय बना रही थी, लाओ मैं भी पिऊँ।" मैं प्रकृतिस्थ हो चुकी थी। कहाँ बिठाऊँ इन्हें। पास ही पड़े पीढ़े को खींच ओसारे में वे बैठ गए। मैंने एक मात्र कप में चाय डाल कर उन्हें दी और चुपचाप सामने बैठ कर उन्हें निहारने लगी। पास पडे टूटी बडी के टुकडे लेकर कच्ची जमीन में आँडी तिरछी रेखाएँ बनाने लगी।

'तुम क्या लिख रही हो चपा ?"

"कुछ तो नहीं"—मैंने चौंक कर खिंची रेखाओं को देखा। 'अरे, ये क्या, ये तो जंजीर बेडी बन गई।" मैं जल्दी-जल्दी उसे मिटाने लगी।

"इधर मेरे पास आओ चम्पा।" मैं हाथ झाडकर पास आ गई, वे मेरा

हाथ पकड कर होठो तक ले गए और कहा—"अब यही जंजीरबेडो मुझे चाहिए ।"

मैं साधारण लडकी इतनी बडी बात सुनने को तैयार नही थी । लिहाजा उनसे कहा —' बाहर आप्के स थी गाडी लेकर प्रतीक्षा कर रहे हैं, आप यहाँ हैं, लोग क्या कहेंगे ।"

लोगो की परवाह मैं नही करता, तुम्हारे लिए करना है न । तो मैंने कह दिया मैं नम चपा का आभार प्रकट करने जा रहा हूँ । चम्पा ने मेरे कारण बहुत सहा, सब मार गए । '—शरारत से मुस्कराते हुए सोमेंद्र कह रहे थे । ' लेकिन इतनी देर तक आभार प्रकट किया जाता है क्या ?" मैं आँखें उठा कर नही देख पा रही थी । उनके प्यासे नैन सदन जगा रहे थे ।

अच्छा मैं चलता हूँ इसी मुहल्ले मे वकील साहब की कोठी के सामने वाला खपरैल मेरा अपना घर है, उसे मरम्मत करवाकर रहने लायक बना लूंगा । आज कई कायक्रम हैं । कल किसी समय आकर तुम्हारे पिता जी को प्रणाम कर जाऊँगा । फिर तुम्हें घर दिखा दूंगा ।' इधर उधर देखकर उन्होंने पुन मेरी उँगलियो को होठो से छुआ लिया और आगन से निकल गए । मैं निश्चेष्ट बठी थी । लगा सारा समाँ बदल गया है । प्रबल बरसात मे भी बसन्त का आभास होने लगा । आगे पीछे की जगली घास मानो सुन्दर उपवन मे बदल गई । कानो मे मधुर घटियाँ बजने लगी । झांझर बिछुए और ढोल मजीरे आँखो के सामने नाचने लगे । अपने रूप को स्वय सराहने लगी मैं । कैसी अनहोनी घट गई । मैं हरिजन कन्या धन्य हो गई । शबरी को मानो साक्षात् भगवान् राम मिल गए ।

फिर तो साँझ सवेरा का हिसाब किस पता था । मैं चम्पा थी और वो सोमेंद्र थे । उन्होंने पिताजी से, मुझे पढा कर मैट्रिक की परीक्षा पास कराने की आज्ञा ली थी । और भी कुछ बच्चो को वे या ही पढ़ाते थे । अपने घर के अच्छे खाते पीते किसान थे । अभी अविवाहित थे । पिता नही थे । माँ एक किनारे अपने चौके चूल्हे मे सिमटी रहती थी । सस्कार की जकडन को धीरे धीरे उतार रही थी । मुझे प्यार तो करती पर यही सोचकर कि मैंने

उनके पुत्र की अस्पताल से भागने मे मदद की, बड़ी प्रतारणा सहन की। हमारा प्रणय निर्बाध चलता रहा। इसी बीच मे मैट्रिक पास कर गई। अब कालेज मे दाखिला ले लेने को सोमेंद्र का जोर था। मेरे घर की परिस्थिति मुझे ऐसा करने मे मना करती। अत्यंत कठोर श्रम मैं करती। आस पास के घरो मे महिलाओं को बच्चे होने के समय मदद करती। अपने शील स्वभाव के कारण मैं लोकप्रिय थी। प्रत्येक मास में कुछ पैसे और उपहार मिल ही जाते थे।

अब मैंने इसी काम का सारा समय देने का निश्चय किया था। लेकिन सोमेंद्र को बिल्कुल नापसंद था। मैं भी विवश थी। पिताजी रिटायर हो चुके थे। कृष्णा और रत्ना बड़ी हो रही थी। दो भाई स्कूल जाने लगे थे। बड़ी बहन होने के नाते मैं इन उत्तरदायित्वों से मुह कैसे मोड लेती। उन्हे साधारण हरिजनों की तरह सूअर का बाड़ा सहेजते मैं देख नही सकती थी। स्वतंत्र भारत का पहला आम चुनाव। सोमेंद्र भी अपनी पार्टी की ओर से खड़ा हो रहे थे। आजकल उन्हे बिल्कुल फुरसत न होती। मैं जब भी जाती उन्हे लोगो के साथ चुनावी योजना बनाने मे मशगूल देखती। मुझे देखते ही वे खिल उठते। पास बैठाकर कई राजनीतिक मुद्दों पर बहस करते। मैं तो इन बातो मे छोटी थी। उबासियां आने लगती। ऐसा लगता सोमेंद्र मुझ से दूर चले जा रहे हैं। कई चरित्रो का एक सम्मिलन है सोमेंद्र। मैं बौनी थी, बिल्कुल बौनी उनके सम्मुख। दिन ब दिन वे उलझते गए अपने कार्यक्रम मे, मैं कटती गई उनसे।

मैं सोच रही थी कि अपना स्वतंत्र काम शुरू। स्थान और प्राथमिक सामानों के जुटाने का प्रश्न मुंह बाए खड़ा था। तभी मेरे पड़ोसी डाक्टर साहब ने मुझे बुला भेजा और अपनी प्राइवेट डिस्पेंसरी मे काम करने का आफर दिया। सुबह शाम वे बैठते। उनके साथ मैं रोगी देखने में सहायता करती। बाकी समय दाखिल रोगियों की परिचर्या में लगाती। तब भी काफी समय बच जाता था। मैं स्वतंत्र रूप से औरतों की जांचगी भी करवाती। गोया दिन रात व्यस्त रहती। रात को कभी कभी एमरजेंसी काल भी

अटेंड करना पड़ता। तब मुझे डाक्टर साहब के यहाँ रह जाना पड़ता। बच्चों के साथ रहने में मुझे कोई एतराज नहीं था।

आर्थिक सुदृढ़ता हो गई थी। रत्ना का विवाह कर दिया था। कृष्णा हाईस्कूल में पहुँच चुकी थी। एक भाई मैकेनिक की ट्रेनिंग ले रहा था, दूसरा मेडीकल में दाखिल हो गया था। पिता जी बड़े प्रसन्न थे आजकल। ऊपर से मैं भी खुश थी पर भीतर ही भीतर कहीं टूट रही थी। अचानक सोमेंद्र क्यों बदल रहे हैं। मेरी परिस्थिति को जानकर भी वे इतने जिद्दी क्या हो गए हैं। जिस दिन वह बुलाएंगे मैं पहुंच जाऊंगी। अब तो मेरा काम समाप्त हो रहा है। कई बार उनके यहां जाती तो पार्टी वालों से गरमा गरम बहस करते हुए व उड़ती निगाहों से मुझे देख लेते। धीरे धीरे दृष्टि की गर्मी कम होती प्रतीत होने लगी। मैं अपने निराशानुरागी मन को सम झाने का प्रयत्न करती कि काम से फुरसत पाने पर फिर सब कुछ ठीक हो जाएगा। जैसा पिछली बार हुआ था।

सोमेंद्र के सामने मात्र अपना व्यक्तिगत सुख प्रबल नहीं था। व तो जन नेता थे। लाखों करोड़ों भारतीय उनके विचारों और कर्त्तव्यों की ओर दृष्टि बिछाए बैठे थे। मैं नाहक स्वार्थ में डूबी हूं। ऐसा सोचते ही अपनी क्षुद्रता पर ग्लानि से भर उठती। उनकी माँ से मिलकर लौट आती। चुनाव आ गया था। इधर आम के बौर महक उठे उधर चुनाव का एलान हुआ। इधर कोयल अमराई में कूकी, उधर प्रचार का भोंपा गूंज उठा। मैं जब भी अकेली होती सोमेंद्र की ओर ध्यान चला जाता। चुनाव की सरगर्मी में, लाउडस्पीकर के शोर में न उन्हें आम का बौर दीखता होगा न कोयल की कूक सुनाई पड़ती होगी।

डिस्पेंसरी में या अंदर कमरे में बैठे डाक्टर साहब अक्सर मेरे मौन का कारण पूछते। उन्हें हैरत होती होगी कि मैं क्यों इतनी शांत हो गई। डाक्टर की शराफत कि कभी उन्होंने अधिक कुछ न पूछा बल्कि अक्सर ऐसा लगा वे कुछ छुपा रहे हैं अपने मन के अंदर। इतने दिनों में एक बार उन्होंने कहा कि क्या न मैं उनके घर रह जाती हूँ बच्चे भी प्रसन्न हो जाएंगे,

मुझे भी सुविधा रहेगी। ऐसा लग रहा था, उनकी आँखों में काले काले बादल घुमड़ रहे हैं। लेकिन साहस के बावजूद डाक्टर साहब इससे अधिक न कह सके। न मुझे अपने यहाँ रहने पर सहमत कर सके। वैसे दिन रात का एक बड़ा समय मैं उनके घर, डिस्पेंसरी और बच्चों को देने लगी। मुहल्ले टोले में कुछ खुशफहमियाँ भी उभरीं।

चुनाव परिणाम आने लगे। जैसी कि संभावना थी सोमद्र भारी बहुमत से जीतकर स्वतंत्र भारत के प्रथम लोक सभा में संसद सदस्य चुन लिए गए। उनके अभिनन्दन में स्थान स्थान पर समारोह आयोजित किए गए। उनकी जीत मेरी जीत थी ऐसा मैं मानती और अन्दर ही अन्दर उत्फुल्ल थी। उस दिन डिस्पेंसरी से छुट्टी ले अपने घर चली आई। घर का रूप बदल चुका था। अब सुन्दर खपरैल बंगला बन चुका था। दो चार कुर्सियाँ भी बनवा ली गई थीं। जंगली घास के स्थान पर ईंट की दीवार थी। एक छोटा दरवाजा भी था। मैंने उसे खुला छोड़ा था। सोमद्र आएँगे अवश्य। व नहीं आए। क्षीण घिरती गई, साँस का काजल बिखरता गया जो मेरे मन प्राण को भी डुबो गया। आठ नौ के करीब मैं स्वयं थके पाँव उठी और यंत्र चालित सी उस ओर निकल गई जिधर उनका घर था।

घर पर बड़ी सरगर्मी थी, शायद यहाँ बधाई देने वालों का ताँता लगा था। मिठाईयाँ बाँटी जा रही थीं। मैं लोगों की दृष्टि झलती अन्दर चली गई। माँ ने मुझे देखते हुए उत्साह से भरकर बैठने को कहा। थोड़ी ही देर में मिठाई आ गई। सब कुछ भाया था, फिर भी मेरा मन घायल था। अन्दर बाहर सोमद्र आ जा रहे थे। माथे पर रोली का टीका, गले में माला उत्साह से भरे सोमद्र। मेरी ओर से आँखें बचाने में सचेष्ट। अलग अलग दलों में मेरी ओर उँगली उठा बातचीत करने की होड़ लग गई थी। मैं जानती थी कि दंत कथाओं में मेरा नाम वही तजो से स्थान पा रहा था। तो लोग महसूस कर रहे होंगे—सोमद्र की बसवी। अचानक मुझे अपनी उपस्थिति बेमानी लगी। मैं उठ कर चली आई। दरवाजे से निकलते हुए सोमद्र टकरा गए। मैं एक क्षण को निस्तब्ध हुई। आँख भर आई। उनकी उँगलियाँ

के पोर को अपने होठो से लगाया। मैं जितनी ही भावविह्वल थी वे उतने ही भावहीन। 'अच्छा चम्पा, फुरसत से मिलेंगे।' कहते हुए चल गए, अन्दर माना पीछा छुड़ा रहे हैं। आँखों मे कुछ नहीं। हाथो म कोई गर्मी नहीं। भोली चपा रोती लौट आई।

फिर तो दिल्ली जाने की जल्दी। वे मुझसे मिल न सके। मैं माँ क पास जाया करती थी। एक दिन माँ ने बताया— 'अब सोमद्र का विवाह कर रही हूँ।' अच्छा सोमद्र राजी है?" मैंने पूछा।

'अरी हाँ बेटी, बड़े भाग्य से तैयार हुआ है। लड़की देखी भाली है। तभी तयार हुआ है।" माँ ने गद्‌गद होते हुए कहा।

मेरा कलेजा मुह को आ गया। कौन हो सकती है? फिर पूछा— "उनके योग्य तो है?"

'अरी हाँ मेरी ननद की जिठानी की लड़की है, मेडिकल मे पढ़ती है। बड़ी तेज है, चुनाव म छुट्टी लेकर साथ मे घूमती रही। तुम तो जानती हो हमारे समाज म लोग लड़कियां का बाहर निकलना पसन्द नहीं करत। पर फिर भी गाँव गाव घूमी वह। औरतो का वोट उसी ने दिलाया। मैं जानती हूँ बड़े कोमल दिल का लड़का है मेरा बेटा। उसका कर्ज उतार देगा उससे शादी करके।'

बूढ़ी माँ गदगद थी। मेरी आँखो के सामने मेरा संसार लुट गया। मैं कुछ और न सुन सकी। मैं भी कितनी भोली थी। एक द्विजवर की कल्पना करने लगी थी। स्वतन्त्र भारत के अन्य करोड़ो नागरिको की तरह मैं भी बदले समाज की कल्पना म विभोर थी जब कि कल्पना कोरी निकली। उस समय तक मुझे भान भी न था कि मिश्रित व्यवस्था का बधनखा मेरे गले म चुभा दिया जायेगा ताकि सारा लहू पी ले, मुझे अपना जसा बना ले।

ओह, तो इसीलिए ऐसी रूखी दिखाई थी। कथनी और करनी मे अन्तर है। सारस क गल म अटकी हड्डी की तरह मेरा और सोमद्र का स्थायी वैवाहिक सम्बध कौन सा समाज निकालेगा? अंग्रेजो के विरुद्ध क्रांति करने वाले सोमद्र क्या सामाजिक क्रांति करने की इच्छा भी नहीं रखत? नहीं

रखते होगे । उन्हे अच्छी सजातीय सुन्दर और उच्चशिक्षिता लडकी पसन्द आ गई है । अब मेरी क्या बिसात है ? झूठी प्रसन्नता का नाटक करती मैं माँ के पास से घर चली आई । जितना चाहिए था उतना बडा आघात लगा नही । इस बीच सोमेंद्र के बदले व्यवहार ने बहुत कुछ कह दिया था । फिर भी विद्रोह का अकुर फूट चुका था मेरे मन मे । अपने काम के साथ मैं और अधिक व्यस्त होती गई । अपना रूप शृगार भी बदल दिया । शीघ्र मैं एक प्रसन्नचित बेबाक युवती के रूप मे उभरकर लोगो के सामने आई । आज,मुझे अपने पर आश्चर्य नही होता, उन दिनों अपने बाह्य रूप का मेरा हृदय स्वीकारने के पक्ष म नही था । मेरे अन्तस्तल के निशीथ को कोई नही जानता । भरी जवानी मे मेरा मन विधवा हो गया था । मेरे बाहरी व्यक्तित्व के बसत को लोग देख रहे थे । चटपटी दतकथाओ की मैं पात्र थी । मैं उन्हे सुनकर और अधिक सतुष्ट होती । लगता सोमेंद्र से बदला ले रही हूँ ।

और सोमेंद्र उन्हे कुछ न हुआ । मुझे ऐसे भूल गये जैसे मैं पढते हुए वृहत् मोटे ग्रन्थ का एक अध्याय मात्र हूँ । और जस वे अगला अध्याय पढने जा रहे हों ।



लबी सीटी देती हुई गाडी रुक गई है । लगता है कोई बडा जक्शन है । मेरा सिर भारी हो रहा है । पलको के पपोटे स्मृतियाँ झेलते हुए लाचार हो गए हैं । चाय पीने की इच्छा हो आई । देख रही हू सहयात्री उठकर बैठ चुके है , मैं निस्पद पडी हूँ । वे पैरो मे चप्पल डाल बाहर प्लेटफार्म पर निकल जाते हैं । थोडी देर मे बैरा आया और मुझे आवाज देने लगा । मैं अकचका कर उठ बैठी । बैरे ने ट्रे रखा एक ही कप था । चाय बनाते हुए उसने कहा, "साहब नीचे टी पी रहे हैं और लोग भी हैं, मुझे आपका पहुँचाने कहा है ।"

मैं चुपचाप चाय पीने लगी हूँ । तो क्या सोमेंद्र मेरी इच्छा को जान गए हैं ? मैं जगी हूँ, समझ गए । निसग होते हुए भी अनाव नही रहा जा सकता । उन्होने मेरे साथ नितात निजी स्तर पर छल किया था किन्तु मैंने तो उनकी

एक बार फिर हमारे नगर मे दंतकथाओ का तूफान उठा। मैं भी कटिबद्ध थी। अब किसी की परवाह नही। जब परवाह करने वाले शहर के लाखो लोग है ही तो आवश्यकता क्या है।

चुनाव निकट था। शायद कोई पुरानी निजी शत्रुता निभाने को सामेद्र के खिलाफ मुझे खड़ा करवा दिया। चुनाव प्रचार मे मेरे पुराने उपकारो को नए-नए रग दिए गये। मैं भी दीवानी हो गई थी। अपने आगे पीछे लगी भीड़ पर बड़ा विश्वास था। सोमेद्र ने कभी किसी बात का प्रतिवाद नही किया। रास्ते मे जब कभी हमारी गाडी एक दूसरे के सामने से गुजरती, वे मुह फेर लेते। चूकि मैं सत्ता प्राप्त दल की ओर से चुनाव लड रही थी सो धन जन की बाढ मेरे पीछे थी। साम दाम दड भेद की नीति पर चलने पर भी मैं पराजित हो गई थी—बहुत बड़े अ तर से। निजी मामले के पश्चात् सार्वजनिक क्षेत्र मे मैं फिर हार गई। मैं घायल शेरनी हो रही थी। अनेक प्रकार से समझा बुझाकर लाला हरदयाल ने मुझे शांत किया। राजनीति का खून जो मु लग गया था। अब मैं अकुरित बीज सूखने न दूगी—ऐसा मैंने सोचा। हुआ भी यही। लालाजी के सुख, मेरे हरिजन होने और आकर्षक की स्वामिनी होने के कारण राज्यसभा म मैं ले ली गई।

दिल्ली आकर मैं बदल गई थी। पूर्णरूप से राजनीति म लिप्त हो गई। लालाजी के साथ निर्बंध घूमना फिरना शुरू कर दिया। अचानक मेरे परो तले की धरती निकल गई। मैं लाला के बच्चे की माँ बनने वाली थी। बच्चा मुझे स्वय नही चाहिए था। लेकिन अब क्या करती। लाला से कहा तो उसने डाक्टर के पास चलने की सलाह दी। जाने क्यो मैं असह्य हो गई। मेरे मन का कोना मेरे वश म कभी नही था। कब मैं क्या कर बठती मात्र विधाता ही जानता था। हरदयाल को बुरी तरह झिडका और कहा कि—"मैं तुम्हारे सहारे नहीं हूं, तुम चाहो तो मुझसे बंधे रह सकते हो, चाहो तो अपना रास्ता अलग कर लो।"

हरदयाल तुर त चला गया मानो राह ढूढ रहा था। उसके चले जाने के बाद मैं अपने का असहाय महसूस करने लगी। मैं स्वय नस थी। कई

लोगो को परेशानी से छुटकारा दिलाया था। स्वय अपना उपचार करने लगी। बच्चे को किसका नाम देती ? फिर मेरी राजनीतिक महत्वाकांक्षा का क्या होता ? दवा लेने के बाद फिर होश नही रहा। आँखें खुलने के पश्चात देखा, अपने पलंग के पार्श्व मे, मेरे आउट हाउस मे रहनेवाला युवक बैठा था। उठने की चेष्टा करने लगी तो उसने विनीत स्वर मे लेटे रहने को कहा। आते जाते इसे देखा था। कौन है य ? किस अवस्था मे मैं पडी थी, विचार कर मैं सकोच से भर उठी।

"आप अन्यथा न सोचें मैं आपके शहर से यहाँ काम की तलाश मे आया हूँ। आपके परिवार को निकट से जानता हू। आपके पी० ए० ने कृपाकर मुझे स्थान दिया है, आपके आउट हाउस मे। सघर्षशील हरिजन हूँ। मैं आपकी वैयक्तिक कष्ट का साक्षी हूँ तो क्या आप निश्चित रहे मेरे सिवा कोई दूसरा कुछ नही जानता।"

"आप डाक्टर बुला लाए थे ?" मैंने जिज्ञासा की।

"हाँ, हालत देख मैं घबरा गया था, अब खतरा टल गया है।" एक अनजाना नि स्वार्थ युवक मेरे घणित जीवन का साक्षी बना बैठा था। भीतर ही भीतर मैं ग्लानि से भर उठी। शारीरिक मानसिक आघात से उबरने मे समय लगा। लेकिन मेरी जीवनधारा मे कोई परिवतन नही आया। मैं राजनीतिक पक मे आकठ लिप्त होती गई। इस हरिजन कमशियल आर्टिस्ट युवक लक्ष्मीनारायण 'किंशुक' को मैने दिल्ली मे बड़े इम्पोरियम मे लगवा दिया। वह आउट हाउस छोडकर मेरी कोठी मे आ गया। मेरे मन की भावुक नारी ने कि ही अतिभावुक क्षणो मे किंशुक से अपने आपको परिणय-सूत्र मे बाँध लिया और अब मैं श्रीमती चपा किंशुक थी। पर मैं बदली नही। यह सम्ब ध नितांत मिथ्या सिद्ध हुआ। मेरी महात्वाकांक्षाओ ने मुझे किंशुक को भी नही रहने दिया। मैं एक बच्चे की माँ थी। किंशुक कलाकार मन स्वेच्छा से काम छोड बच्चे से मिल गया। मैं स्वच्छ द की स्वच्छद रही। एक वरिष्ठ म त्री का हाथ मेरे सर पर था। अबकी फिर मुझे चुनाव लडने को टिकट मिल गया। मुझे हिदायत दी गई कि मैं अपना द्रोह भूल,

क्योंकि अब सोमेंद्र का दल सत्ताधारी दल का सहयोगी था। हरिजनों के सुरक्षित स्थान से जीतकर मैं लोक सभा आ गई। वरिष्ठ मंत्री का हाथ सर पर था ही, एक सहायक मंत्री का स्थान मैं लपक लाई। घिनौने जोड़-तोड़ के अतिरिक्त मैंने कुछ न किया। न कभी अपने क्षेत्र की ओर गई। लोक-सभा में सोमेंद्र के भाषणों को सुनकर मैं अभिभूत होती रहती। सामने खड़े सोमेंद्र के प्रति आक्रोश दमित रहता। कई बार गर्व किया उनपर। उनके विषय में कई उड़ती खबर सुनती रही। अपने शहर जाने पर सुना करती, दिल्ली में कौन किसे जानता है।

मैं फिर राज्य मन्त्री बनी थी। राजनीति का भोड़ा पंक मेरे नाक तक पहुंच चुका था। अपने प्यारे पति बच्चे की ओर से विमुख थी, फिर भी चरित्रहीनता की निर्धारित सीमा मेरे लिए नियत नहीं थी। असीम दुराचार को मैं राजनीतिक हथकंडी समझती। अब मेरा व्यक्तित्व पूर्णतया परिवर्त्ति था। बड़ी बड़ी पार्टियां से मुझे लगातार पर्स मिलते। ठेके दिलवाना व्यापारिक लाइसेंस दिलवाना मेरा काम था। बड़े बड़े सेठ और उद्योगपति मेरे आगे पीछे फिरते थे। दिल्ली के जीवन का मैं स्पंदन थी। अपने शहर में विशालमहलनुमा घर बना लिया था। दुखी होकर किंशुक बच्चे के साथ वहीं रहते। खेती बाड़ी पर निर्भर थे वे। इधर कई सालों से मैं उनसे मिली भी नहीं थी। जितनी परवा मैं मन ही मन अब भी सोमेंद्र की करती उतनी भी नहीं करती।

सुना सोमेंद्र की पत्नी रही नहीं और वे अस्पताल में हैं हार्ट अटैक हो गया उन्हें। जीवन मृत्यु के झूले पर बैठे सोमेंद्र को देखने मैं अस्पताल गई थी। एक बार आँख खोलकर मुझे देखा था, भरपूर उन्होंने। फिर थकी पलकें बन्द कर लीं। न कुछ पूछा न कहा। मैं उहापोह की स्थिति में थी। क्या कहना चाहते हैं सोमेंद्र ? मुझसे नाखुश हैं क्या ? उनके सीने पर पड़े हाथ, उनके खिचड़ी बाल मैं कुछ भी तो सहला नहीं सकी। आगे पीछे नर्सें थीं— कुछ लोग मिलने आए थे, उनकी प्रिय पुत्री और पुत्र थे। बिटिया का उदास मुख देख दुलराने का मन हो आया। अचानक मेरे मन की कोमल

नारी जाग गई कुछ क्षणों के लिये। बच्ची चंपा का स्मरण हो आया जिसकी माँ उसे छोडकर अनजाने लोक मे चली गई थी और पिता अधपगले हो गए थे। एक हफ्ते के अन्दर बेचारी प्रौढ़ हो गई थी। दो छोटे लडकों की ओर देखते ही मेरा हृदय धक से हो उठा। भोले बच्चे कैसे आँखें बडी बडी कर टुकुर टुकुर ताक रहे हैं। मेरा बेटा सुरेश माँ के होते भी बिना माँ का है। मेरा हृदय आंदोलित हो उठा। मैं यंत्रचालित सी उठकर चली आई। उस दिन बडा पश्चात्ताप हुआ। लेकिन मेरा जीवन इन बातों के लिए बना नहीं था।

चुनाव आ गया। शांति के पश्चात तूफान। पीछे हटने का प्रश्न ही नहीं था। हम तो अब सार्वजनिक हो गए थे। निजी और मौलिक पक्ष गौण हो चला था। बच गया था जनता के लिए समर्पित टुच्चे, स्वार्थियों, परमिट और लाइसेंसधारियों के लिए बचा जीवन। सबसे बडा यंत्र था, मुझे फिर सामंद्र के खिलाफ खडा कर दिया गया। क्यों, इसका उत्तर मेरी अपनी पार्टी के प्रधान दे सकेंगे। जो होना था हुआ। हम दोनों पराजित हो गए। उनका क्या, वे तो बड़े सम्मान्य नेता है। मैं तीन बार उपमंत्री रहकर भी एक साधारण व्यक्ति थी। सो अब अच्छी तरह जान गई हूँ। अपने राजनीतिक जीवन की ओर मुडकर देखने का साहस करते ही मैंने अपने आपको धिक्कारती हूँ। किस कारण मैं इसमें आई। अरुचि सी हो गई है। बडे बडे महत्त्वाकांक्षी राजनेता दल छोडकर चले गए। मुझे भी कहा। मेरे सरताज भूतपूर्व वरिष्ठ मंत्री के आग्रह पर भी मैं अब कभी कहीं नहीं जाऊंगी। अब मैं एक साधारण सीधी सच्ची चंपा बनी रहना चाहती हूँ।



गाडी तेजी से उस स्टेशन की ओर बढ रही है, जहाँ से अपने शहर जाने के लिए मुझे टक्सी लेनी पडेगी। मेरे साथ मेरा सामान है और एक अत्यंत पुराना विश्वासी नौकर। कोई भीड नहीं आएगी मुझे लिवाने। अब सारी स्थिति ही बदल गई है। गाडी सीटी दे रही है मैं कूदकर उठ खडी होती हूँ।

मुझे मन को उत्साह से सहारा देती हुई। तभी एक आशका कौंधती है, बटा सुरेश और पति किशुक मुझे किस रूप मे लेगा? मैं फिर बथ पर अवसन्न-सी बैठ जाती हूँ। सिर हाथो से पकड रखा है।

सहयात्री क्या कर रहा है क्या सोच रहा है, मैं नही जानती। पुरुष की सत्ता और महत्ता अपनी है। हारी हुई चपा अब क्या करे? कोलाहलमय स्टशन। गाडी घिसटती हुई रुक गई। लबी यात्रा करती गाडी ठौर लग गई। निराशा से मैं ट्रेन के भीतर लगी मधुवनी चित्रकारी निरखने लगती हूँ। चारो तरफ नाग बीच म बठे शिव पावती। चटख रगो का सयोजन। मुझे कभी अपने नेत्र की इस मौलिक कला का कोई ध्यान नही था। कि तु आज जन्मभूमि की कला, शिव का शिव रूप, पावती का प्रेयसी पत्नी रूप और आगे पीछे फले हुए विषैले नाग मेरी दृष्टि बाँध गए। मेरा और सोमद्र का आदमी सामान उतारने कुली लेकर पहुच गया था। सोमद्र सीधी आँखो से मुझे देख रह हैं, मैं चोरी स। क्या अब भी हम सच्चे मित्र बन सकते हैं? मैं अपने मन को टटोलूगी। फिर हाथ बढाऊगी। सोमद्र, आप जो दश दिए हैं, जिस राह पर लाकर खडा कर दिया मुझे, वह सहज भुलाया नही जा सकता।

अब भी मैं आपके साथ सबध के अतिम पडाव तक जुडी हूँ। परिस्थितियो के ज्वार भाटे म मेरा स्वाभिमान अवश्य जरूर है कि तु अपनी सवेदनाओ के सम्मान को ठेस न लगने दूगी। सांसारिक दृष्टि से अलग रहते हुए भी मैं सदा आपके पीछे चली। आपको सहयात्री माना। मैं उदास हूँ अवश्य पर सोचने की क्षमता रखती हूँ।

सामान निकल गया दोनो का। शायद हम प्रतीक्षा कर रहे हैं पहल की। कोई आगे नही बढता। सहसा तभी—सुरेश का स्वर ।'माँ माँ ।"

'सुरेश तुम?"

"हा माँ, गाडी लेकर आए हैं, पिताजी भी हैं।'

मुझे घसीटते हुए नीचे ले चलता है। मैं खिचती हुई लगभग इस सांवले सलोने किशोर के साथ चलती हू, जिसे कभी ढग से, प्यार नहीं किया। किंशुक गाडी के पास खडे है उत्सुक और उज्ज्वल नयन मेरे चेहरे पर टिके हैं। मेरे पास आकर कधो से पकड मुझे गाडी मे बिठाया। स्टीयरिंग पर स्वय बैठे, बीच मे पुत्र सुरम बैठा है। वह बडा प्रसन्न है, उसकी बातें शुरू हो गई है। किंशुक की मौन आँखो ने मुझे आजीवन सहारा देने का वचन सा दे दिया है।



सरवहारा/ऋता शुक्ल

गाव अब गाँव नहीं रह गया है । खेतो की मेड पर पतलून के चौडे चौडे पायचे उठाए दुखिया के इनार की ओर तेज तेज भागे जा रहे नए नोहर लडकों को दखकर मचान पर बठे तिलकधारी बाबा एक लम्बी उसास लेते हैं—कौन कहेगा कि ये मरद बच्चे है ? मरदानगी का यही रूप होता है ? दाढी मूछ मुडी हुई, बडे बडे रुखडे केस लिलार से लेकर कनपटियो और गले तक फहरते हुए जसे मरियल घोडे की गरदन पर झूल रहे बालो की उलझी हुई गाठें हो ।

□ ऋता शुक्ल

सरबहारा

गाँव अब गाँव नही रह गया है । खेतो की मेड पर पतलून के चौडे-चौडे पाँयचे उठाए दुखिया के इनार की ओर तेज तेज भागे जा रहे नए नौहर लडको को देखकर मचान पर बैठे तिलकधारी बाबा एक लम्बी उसाँस लेते हैं—कौन कहेगा कि ये मरद बच्चे हैं ? मरदानगी का यही रूप होता है ? दाढी मूछ मुडी हुई, बडे बडे रुखडे केस लिलार से लेकर कनपटिया और गले तक फहरन हुए , जैसे मरियल घोडे की गरदन पर झूल रहे बालों की उलझी हुई गाँठे हो ।

तिलकधारी बाबा मचान पर अधलेट होकर गाँव से बाहर जाने वाले लडको की गिनती करने लगते हैं—एक दू तीन चार पाँच—छौ , सबसे आगे राजकिशोर सिंह का बेटा है सरूप । हाथ मे चमडे का बैग, काली पतलून मे खोसी हुई उजली कमीज, आँखो पर धूपहरी चसमा । उसके पीछे रमललवा है—सुन्नर जादव का सुपुत्तर ! कहता है बीये पास करके गाँव म रहना फजूल है । शहर म चार पइस की नौकरी मे भी शान है । देखत ही-देखते कैसी रंगत बदल गई है बचुवा की । सात पुश्त तक किसी को बिस्तर नहीं जुरा, बाप दादा घुटनो तक मोटिया पहनते ओढ़ते रहे लेकिन रमललवा के इस्तिरी किया हुआ माँडीदार कुरता पजामा चाहिए , ऊपर से काबुलकट बबडी ! घर स निकलने के पहले बीसियो बार पाकिट कंघी से तिरछी माँग काढ़ता है ।

आजकल फिलिम का यही फैसन है । उसके सभी सहरी यार दोस्त इसी तरह केस सँवारते हैं । जो वह ऐसा नही करेगा तो सब उसे इडियट नही समझेंगे ? इडियट माने बेकूफ होता है, बकूफ ! क्या समझे ?

रमललवा, नहीं नहीं, रामलाल जादव अपनी गँवार माँ को समझाया करता है।

रामलाल के पीछे पीछे जीतन ठाकुर का बेटा हरबिलसवा है। बित्ता भर भगई पहिन कर बाप के पीछे पीछे इस घर से उस घर दौड़ता रहता था। अब जरा ठाट देखो—सिलिक का कुरता और फरदी धोती, गोड़ में काले चमड़े की फीतादार चप्पल, ठौर पर पान की लाली। ठठा कर हँसता है। एक समय था जब गड़ही में धँसा हुआ पेट लिए नंग धड़ंग आकर गोहार लगाता हुआ भुइयाँ लोट जाता था—बाबा हो, दू दाना मकई के दे द—, पट करता हो—बाबा—।

कैसा हो गया है यही हरबिलसवा? नाम के आगे पदवी नहीं लगाता। खाली हरिबिलास लिखता है। कहता है—पदवी पाती छुटा देने में ही फैदा है। जात पाँत की राजनीति में नाम के आगे पदवी लगा कर चलने से कुछ भी नहीं मिलने का। नौकरी के लिए पूछ ताछ करने वाले अफसर बाबू पहले डिगरी नहीं देखते, पहले पदवी पर आँख गड़ाते हैं। इसीलिए उसकी कोई पदवी नहीं रहेगी। पूछे ससुर, जिसको जो पूछना।

हरबिलसवा की बात बेजा नहीं है। गम्भीर अरथ निकलता है इस बात से। तिलकधारी बाबा मचान पर सीधे बैठने की कोशिश करते हैं। देर तक एक करवट पड़े रहने के कारण रीढ़ की बूढ़ी हड्डियाँ चटक उठती हैं चट चट। दर्द की एक लहर उठती है। अधपकी भौंहों में सिकुड़न आ जाती है। कमर के दर्द को दाँती चढ़ा कर झेल जाते हैं बाबा। उभरी हुई नसों वाला बाँया हाथ काँपता हुआ पीछे कमर की ओर मुड़ता है। वे झुक कर अपनी बात-पीड़ित पीठ को हल्के से सहलाना चाहते हैं लेकिन अचानक तनाव पड़ने से पसलियाँ बगावत कर देती हैं। वे न झुक सकते हैं, न सीधे बैठ सकते हैं।

दर्द की जानलेवा ऊहापोह से कनपटियों की नसें थर थरा जाती हैं। वे मेड़ पर जाने वाले आखिरी लड़के को पुकार लेना चाहते हैं

सिवा? लौट आ बेटे लौट आ।

उनकी बूढी आवाज कफ से खरखराते फेफडो के भीतर ही दम तोड देती है। इस एकलौते पोते की बहुत जरूरत थी। वह आता, उनकी पीठ को सहला कर मचान से नीचे उतरने म उनकी मदद करता। नीचे गिरी लाठी उठा कर उनके हाथ मे घरा देता और वे एक हाथ उसकी चौडी पीठ पर रख कर कलेवा के लिए धीरे धीरे घर चले जाते।

लेकिन सिवा भी सबके साथ दूर चला जा रहा है। सिवा को भी नौकरी चाहिए वह भी गाँव म नही रहेगा।

छोटा-सा था, जब कनिया की जवान देह चादर म बाँध दी गई थी। आँगन म पछाड खाती आजी का मैला अँचरा दोनो हाथो से पकडे हुए सिवा पूछ रहा था। रो रो कर पूछ रहा था—बताओ न, अमाली माँ तआँ दई ? अमाली माँ तो तौन ले दया ?

बूढी ने गुडहा बताशा हाथ मे थमा कर सिवा को कलेजे से सटा लिया था—तरी मतारी को सहर ल गए हैं बबुआ। अब वह वही रहेगी।

लोअर पास करन के बाद जब सिवा के आगे पढने की बात उठी थी तब तिलकधारी बाबा थोडा कुनमुनाए थे—गाँव मे हाई स्कूल नही है बक्सर मे तो है। क्या जरूरत है आरा मे रखकर पढान की ? यहाँ स एन्ट्रेंस पास करने वाले लडके क्या लडक नही हैं ?

लेकिन सिवा के बार की एक ही बात ने उनका मुह सी दिया था—

मरने वाली ने सपना देखा था बाबूजी, सिवा को पढा लिखा कर बडा आदमी बनायेगी, ऊँचे ओहदेदार अफसर की माँ कहलाएगी। उसका अरमान पूरा करना है।

बाबा मुड कर देखते हैं—दुखिया के इनार की चौडी जगत पर लडके बठे हुए हैं। आरा जाने वाली बस की इन्तजारी है। नौकरी दिलाने वाले दफ्तर स पूछ ताछ के लिए सबको बुलावा गया है। हरबिलसवा की ठनकदार हँसी इतनी दूर तक भी सुनाई पड रही है। सबस अलग सिर झुकाए सिवा बठा है। बाबा को लगता है—लडके के कलेजे पर कोई भारी सिल दबा कर रखी गई है—घर मे किसी से बोलता चालता भी तो नही। बोले भी किस से ? बाप को खेती- बधारी से फुरसत नहीं मिल्ती।

कनिया के मरने के बाद सुदरसन ने अपना सारा वखत खेती में ही लगा दिया है। साँझा-बाती तो वे खुद ही कर लिया करते हैं। रात में गोयठा जला कर मोटे मोटे टिक्कड़ सेंकने का काम सुदरसन का है।

कनिया और बूढ़ी दोनों जिन्दा थी, तो घर घर लगता था—चूल्हे के सामने बैठी कनिया का दप दप दमकता मुँह बाबा की आँखों के सामने घूम गया। सुबह सुबह खटिया से उठते ही कनिया आँचल से उनके पाँव छूती, उन्हें लोटे का पानी और दतुअन पकड़ा देती। कुल्ला करके आते तो फुलहा गिलास में गइया का गरम गरम दूध सिरहाने रखा होता।

कितना खयाल रखती थी कनिया दोनों बूढ़ा बूढ़ी का! भले मानस की बेटी थी न! बाप बड़ा भारी जोतिसी था। सारे गुन सीख कर इस घर आई थी। सांत सुभाव! वह तो बूढ़ी ही जब न तब मुँह बजाती रहती थी। बिना बात की बात—कनिया की देह एक बेटा जन कर ही ठूँठ हो गई। दूसरों के घर में देखो, कितने बाल गोपाल हँस खेल रहे! इसकी तो कोई आस नहीं। सिवा बड़ा हो रहा है। खाली बैठे बैठे मेरी तो हड्डियाँ पिराने लगी हैं। कम से कम एक और हो जाता। कनिया बूढ़ी की बात का कोई जवाब दिये बिना हँस देती थी। बाबा ही अपनी ओर से गृहिणी को समझाते—कनिया से कुभाखा मत बोला करो। लछिमी का औतार है, उसे चोट पहुँचती होगी। बाल बच्चा का होना न होना कोई अपने बस की बात तो नहीं है न! सब भगवान की करनी है।

बूढ़ी चमक जाती थी—तुम का जानो सुदरसन के बाबू? कनिया सहरी चाल चला रही है। सहर में जो बयार बही है न—एक या दो सन्तान, उसी का असर उस पर भी हो गया है। जब तब कहती रहती है—पाँच बिगहा खेत है ज्यादा लोग बढ़ेंगे तो गुजर कैसे होगी? सिवा के मुँह का आहार बँट जाएगा। एक ही रहे, काफी है।

बाबा ने खेत की गोड़ाई करते वखत सुना पाकर बेटे से पूछा था—सुदरसन, तेरी साई जो कहती है ठीक है क्या? तुम लोगों ने बच्चा नहीं होने का कोई डागदरी उपाय कराया है?

सुदरसन ने थोडा झेंप कर कहा था—सिवा की मा कहती है, सिवा पांच साल का हो जाय तभी

सिवा ने पांच साल पूरे भी नही किए थे। कनिया उसके पहले ही चली गई थी। बूढी ने रो रो कर बताया था—कनिया के गोड भारी थे और वह भरी बाल्टी लिए फिसल गई थी। उसने किसी को बताया भी तो नही था।

बस आ गई है।

दूर से उडती आ रही धूल के गुबार म सब कुछ छिप गया है।

बाबा आँखें गडा कर देखने की कोशिश करते हैं

सारे लडके एक एक कर ऊपर उठे।

सिवा सबसे पीछे चढा है यह लडका हमेशा पीछे ही रहता है सबस पीछे! कनिया ने इसे अगली पांत म देखने की बात सोची थी।

बस चली गई है। धूल और धुएँ के निशान पीछे छूट गए हैं। नुमाइश मे घूमती चरखी की तरह दिन पर-दिन, महीने पर-महीने, साल पर साल तेजी से घूम जाते हैं। बाबा की आँखो के सामने वह दिन है—

बूढी का बनाया हुआ ठेकुआ, नैनकिलाट की नई फरदी, अरवा चूडा, गुड और चवनी की मोटरी लेकर पहली बार आरा गए थे। पकिया मकानों का वह सहर उन्हें पहली बार भूल-भुलैया सा ही लगा था। टीसन के पास उतर ते ही टमटम वालो, रिक्स वालो न घेर कर पूछना शुरू कर दिया—

कहाँ जाना है पडीज्जी ?

आइए, आइए रिक्से मे आइए न !

आइए बाबा जी, हमारी टमटम म, हम जल्दी पहुँचा देंगे !

■ होने एक रिक्से वाले से पूछा था—जिला स्कूल के लिए कितना लोगे ?

बस बारह आने पडीज्जी !

बा र ह आने ?

बाबा की आँखें कपाल पर टँग गई थीं, लिलार का त्रिपुण्ड सिकुड गया था। उनकी टेंट म बारह रुपए थे—।

एगारह रुपए सिवा को दे देना है। आठ आने की [बढ़िया नखलउवा सुरती खरीदनी है और आठ आना बस का वाडा देना है। न , वे पदल ही चले जाएँगे।

मोटरी बगल म दबा कर वे रिक्से, टमटम वाला की खीचातानी से बचत हुए बाहर निकल आए। पूछते पाछते जिला इस्कूल पहुँचे। फाटक पर बैठा चपरासी न खबर दी—टिफिन होन मे आध घटे की देरी है।

वे वही सोमेट की पुलिया पर बैठे पोते का इतजार करने लगे।

बूढ़ी ने उनका कलेवा भी साथ ही बाध दिया था—गाँव लौटते लौटते बेर डूब जाएगी। तुम कही बैठ कर आग लगा लेना।

है यहाँ कोई ऐसा ठाव जहाँ पानी वानी पिया जा सके ?

बाबा का प्यास लग आई थी।

चपरासी ने मूड हिला कर सडक के पार वाले ढावे की ओर इसारा किया था—सस्ता होटिल है। हम लोग भी वही पा पीते हैं। तुम चले जावो पडोज्जी।

व देख चुके थे ढाबे का नोकर ताजे जिबह किये जीवो को लेकर थोडी देर पहले ही भीतर गया था। तीन तीन मुर्गो की टाँगें सुतली म एक साथ नाधी गई थी। भीतर उनके पख उधडे जाते होग उ ह कडाह म भूनने की तयारी हाती होगी—लाल लाल मास तेल मसाले मे सना हुआ।

बाबा के खाली पट मे उबकाई की एक लहर दौड गई थी—लगा था पित्त की थली समेत पेट का सब कुछ अभी बाहर आ जाएगा। व उधर से आख घुमा कर इस्कूल की ओर देखने लगे। अभी सिवा आएगा। उसे लेकर व होस्टल चले जाएँगे। वही एक लाटा पानी मगवा कर

सिवा ने उन्ह पुलिया पर बठे देख लिया। अपन साथियों से अलग होकर वह उनके नजदीक आ गया—

बाबा—बा बा!

तू कितना दुबर हो गया रे—?

सिवा की पीठ पर हाथ फेरते बाबा की आँखें थिलमिला गई थीं।

सिवा का सूखा मुंह, उसकी खाकी पोशाक, उसके काले जूते सब धुंधले हो गए।

तुम यह त्रिपुण्ड मिटा कर क्यों नहीं आए बाबा ?

सिवा ने होस्टल पहुँचते ही बाबा से कहा था—सब लड़के तुम्हारे आने के बाद मुझे तंग करेंगे—

पंडित का बेटा शिवानंद पंडित—!

लेकिन पंडित होने में कौन सी ऐसी बेजा बात हो गई कि सब लड़के सिवा को तंग करेंगे ? बाबा को समझ में नहीं आया।

इस होस्टल में सब अमीर लड़के रहते हैं बाबा—! चार-चार जोड़ी जूते, छह छह, आठ आठ जोड़ी कपड़े ! टिफिन में रोज आठ आने तक उड़ा जाते हैं। मेरी तरह दो कमीजों में गुजारा करने वाले लड़के यहाँ दो-चार ही हैं। मेरे कमरे में सहदेव रहता है न, उसके बाबू जी आए थे। लड़कों ने उनकी ऊंची धोती और पगड़ का सहदेव के सामने खूब मजाक उड़ाया था—वह बेचारा रो पड़ा था।



बड़ा भारी और बुझा हुआ मन लेकर तिलकधारी बाबा सिवा के होस्टल से निकले। सहदेव की तरह ही सिवा को भी लड़के चिढ़ा रहे होंगे—

पंडीज्जी की लम्बी चुटिया—

चुटिया में से निकली चुहिया—

पंडीज्जी की पगड़ी में क्या है ?

राधेश्याम सीता रा म !!

सिवा कुढ़ रहा होगा, रुआंसा हो रहा होगा। सिवा ने अपने कमरे का दरवाजा भीतर से बंद कर लिया होगा, अब वह फूट फूट कर रो रहा होगा।

गाँव की ओर लौटते हुए बाबा सहसा बेचैन हो उठे थे। सिवा के बिना सब कुछ उदास लगने लगा था।

पढित होना कोई बेजा बात है क्या ? या कि गरीब होना कोई अपावन बात है ? बाबा के मन म य सवाल अरहर की खूट स रह रह कर खोचा मारने लगे थे।

गाँव म अब उनकी औकात नही क बराबर है। पचास बिगहा पु तनी खेत गोतिया दयादा को बाँट बखरा वाली नीयत के पीछे दस टुकडो म बट गया था। तिलकधारी बाबा क बाप पंडित जीवान द तिवारी तीन भाई थ। तिलकधारी बाबा माँ बाप की अकेली सतान थे। बाकी दोना भाइयो क दो दो बेटे थे।

मँझले काका कलकत्त म सिपाही गिरी करते थे। वही स साइत कोई नया कानून सीख कर आए थे। बीमार पढित जीवान द तिवारी का खटिया से उठा कर उ होने मुह अधर अपनी बात कही थी—भइया हो, अब खेन बधार का हिसाब किताब अलगा दिया जाए तो नीक बा। हम सिपाही आदमी। घेर-बेर कलकत्ता स गाँव आन म हमको भी मुश्कील होता है— अब डेरा डडा वही रखना चाहते हैं।

जीवान द तिवारी के कलेजे म बबुरी का काँटा धँस गया था। पूरे गाँव मे एक ही परिवार बाभन का। एक साथ हिल मिल कर बढता— फलता फूलना। एक स इक्कीस होता। सँघाग का कितना बल होता है ! वे उमग उमग कर गाँव भर को कहते फिरते थे—अब हमारा परिवार बढ रहा है। छोटकू को बक्सर क बडे इस्कूल म मास्टरी मिल गई है। बाभन का असलो धरम निभा रहा है मेरा भाई। सबस उत्तम होता है विद्या का दान—छोटकू कुल परिवार का माथ ऊपर करेगा।

मँझले काका ने अपने हिस्से का खेत अधिया दाम पर राजकिशोर सिंह के हाथ बच दिया था। कलकत्त की पछिया हवा ने उनकी मति बिगाड दी थी। बाल बच्चा सहित वे कलकतिया बन गये थे।

पडित जीवान द तिवारी की आस छोटका काका पर लगी थी। धरती माता की सेवा और भाई का दुलार यही उनकी जिनगी थी। आज तक लोग कहते हैं—आदमी देखा, लेकिन तिवारी जी जसा नहीं। दो दो सौ टेंकुल

खींच कर एक ही पारी म बड़े बड़े चक की आखिरी क्यारी तक जल पहुँचाना, हल लकर मुह अँधेरे से ही खेतो मे भिड़ जाना उन्ही न बस की बात रही। कितने पुष्ट, कितने सुरूप उनके दोनो बरधा थे—सनेम कार्तिक की जोडी ! गेहूँ के दान देखे होत तिवारी जी खलिहान के। सुघे मोती की तरह आबदार ! उनके हाथ मे जस था भाई जस !

तिलकधारी बाबा भी तो बचपन मे ही भाई की गोद स छिनगा दिये गए थे। सिवा का दद उनसे बढ कर कौन समझ सकता है ?

छोटका काका के सहर जाते ही बाबू जी की सारी लगन अरररा कर टूट गई थी। हर बाँस की कचनार कोपल का जैस कोई बीच से दो टूक काट दे, बस ही उनकी छाती करक उठी थी, छोटका काका न भी मुह मोड लिया था।

अपने भाई बद, अपनी जात वालो से बाबू जी उदासीन होते चले गए थे। जलपुरा के सिवदान मिसिर न एक दिन उनके सामने कुबोल बोल दिया था—दोनो भाई तो बिभीखन क औतार निकले तिवारी जी, तुम्हारी साने की गिरस्थी माटी मे मिला गए। यह भी नही सोचा कि तुम रँडुआ आदमी, अकेले कैस रहोगे, क्या क्या सँभालोगे ? गोतिया दयाद की यही पहचान है भइया, तुम बेकार आस बाँधे बैठे थे।

मिसिर की बात न नश्तर की तरह बाबू जी का ताजा घाव खुरच डाला था। आव न देखा ताव, वे मिसिर पर बरस पड़े थ—

जबान सँभाल कर बात करो सिवदान मिसिर !

बेटी बेचवा कही के कवन नही जानता कि दक्खिन के करमकाडी बाभन की जमीन रेहन लिखवा कर अपनी कानी बेटी का उद्धार किया है तुमने ! और तुम्हारा हर बोलवा भाई बनारस की पतुरिया क यहाँ सरगिया बना तुम्हारे कुल खानदान की इज्जत आबरू का तरपन कर रहा है। बाभनो की जात का तो अब नाम भर ही रह गया है। एक से एक मलेच्छ जनम लेते जा रहे हैं ! नरक के कीड़े ससुर !

मेरे घर की बात उठाने वाले तुम कौन ? मेरे भाई आदर सम्मान

की जिनगी जीने के लिए सहर गए हैं। उन्होने कोई पतित करम नहीं किया।

तक तिलकधारी बाबा की मसें भीग रही थी। पुटठा म कसाव औ चौडापन आ रहा था। मन म दुनिया जहान की बातें धरती स आकाश तक उडानें भरती रहती थी। नए-नए दिन थे वे, जब जमाने की मार स गिरे बूढ़े जटायु की तरह अशक्त तिवारी जी ने बेटे को अपना राजदार बनाया था। बेटा भी थे, भाई भी, वे उनके सब कुछ बन बठे थे।

लोगो से हम कुछ भी कहते फिरें, लेकिन हमारे भीतर जो होरी जल रही है उसके साखी तो हम खुद ही हैं बबुआ—! मंझलू और छोटकू ने हमारा बिस्वास चकनाचूर कर दिया। दोनो बडे आदमी बन गए, सहरी बन गए। हमने अपने हाथो उनका गू मूत तक साफ किया, का हा चढा चढा कर उ हें गाव के सिवान तक घुमाया टहलाया, इसीलिए कि व गरो की तरह मुह फेर कर चल दे ? और यह सिवदान मिसिर ? रह रह कर जले पर नमक छिडकता रहा है। लोग जात जात चिल्लाते हैं बबुआ! हम तो कहेंगे कि परजात का साथ भला, लेकिन अपनी जात का नहीं। ये अपनी जात वाले काठ कठोर हैं। दया माया तो, इ ह छू तक नही गई। खोरहा कुकुर की तरह एक दूसरे को हबक लने पर उतारू रहते हैं। हमे तो तुम्हारा सोच है बबुआ।

जीवान द तिवारी का कलेजा एकलौते बेटे के लिए रात रात भर कुहुकता रहता था, उनींद की बीमारी धरा गई थी। न जान क्या क्या सोचते रहते थे। अपन आप ही बडबडाते रहते थे। कितने ही सवाल, कितने ही हवाव एक साथ उनके जेहन म घुमडत रहते थे।

बिस्वास टूट जाए तो पोख्ता स-पोख्ता मानुष को भी गीली भीत की तरह ढहते देर नही लगती, तिलकधारी बाबा की जवान छाती भीतर ही भीतर उबलती रहती थी—बाबूजी को जिस घातक सोच ने जकड़ रखा है उसके जिम्मेदार उनके दोनो भाई हैं। उ ही दोनो की रुखाई बाबूजी को घुला रही है।

तिलकधारी बाबा ने पंडित जीवानन्द तिवारी की मिट्टी को छूकर व्रत लिया था गाव छोडकर कभी सहर नही जाना है।

बाबूजी की बडी इच्छा थी अपनी खेती को नया रूप देने की धरती माता की लहलहाती गोद छोड कर सहरी बाबू बनने का राग ही सब अलापने लग हैं बबुआ! क्या धरा है सहर म ? हमने भी घूम फिर कर सहर देखा है। झुकी हुई गरदन वाले दफ्तरी बाबुआ की जिनगी और जुए के बोझ से सकदम रहने वाले बूढे बरधा की जिनगी म मुझे तो कोई भी फरक मालूम नही पडता। रोग हाय हाय, हाय पसा, हाय रुपया।

धरती का निरादर करके हम आकास के सपने देख रहे है, यही तो हमारी दुर्गति का कारन है मझले काका की एक खबर सुनकर बाबूजी ने यही कहा था। मझले काका अपनी तिकडमबाजी से जल्दी ही दारोगा बन गए थे। उनका लालच सुरसा के मुह की तरह बढता जा रहा था। एक दिन एक कालाबजरिया स घूस लेते दो हाथ पकडे गए और हाकिम ने उन्हे नौकरी से बर्खास्त कर दिया।

पडित जीवान द तिवारी खबर पाते ही कलकत्ता जाने की तैयारी करने लगे थे, फिर कुछ सोच कर नही गए। मँझलू का चोट लगनी चाहिए। उसे हमारे पास आना चाहिए। यही ठीक होगा।

भाई क गाँव नही लौटने पर व बहुत दु खी हुए थे सहर की हवा झूठा अभिमान भी सिखाती है क्या ? मँझला हमस भी अभिमान करने लगा है, हमारे पास आने की जरूरत नही समझता ? ठीक है उसे वही सुख मिले।

सिवा के पास से लौटकर तिलकधारी बाबा ने भी उस कचोट का अनुभव किया था। उनकी आत्मा पर पडित जीवान द तिवारी छाते चले जा रह थे—

सिवा को सहर भेजना ठीक नही हुआ। दिये की लौ पूरी तरह सुलगने के पहले ही मद्धिम पडती जा रही है। सिवा का मन बुझता जा रहा है। सुदरसन को तो एक ही टेक है कनिया की आत्मा के लिए। बाबा ने रात की ब्यालू पर बैठते ही बेटे के सामने सिवा की चर्चा चलाई थी ऐसा लगता

है, सिवा वहाँ खुश नही है। उसके भीतर अपनी साधारण औकात का सोच गहराता चला जा रहा है। अभी भी वखत है। उसे आरा से हटा कर बक्सर के हाई स्कूल म डाल देने से बात सँभल जायेगी। गाव के सभी लडके वहीं तो पढते हैं।

उनकी सलाह बेटे पर नागवार गुजरी थी आरा की पढाई ज्यादा अच्छी है, बाबू जी ? आप नही समझेंगे। सब सिवा की दिमागी बहक है, और कुछ नही। राजा भोज और गगुआ तेली का फरक हर जुग म रहा है, रहेगा। टिटहरी चाहे तो सारा आसमान माथ पर उठा ले तो उठा सकती है ? हमार बस का जितना है, हम करेंग। बाबा के मरते ही खेत बधार तहस नहस हो गया था। हम भी सतुआ घोल घोल कर चार आखर सीख पाए थे। दिन भर हाड जलाकर जितना कुछ कर पा रहे हैं, उतना ही बहुत समझ

गाव के लफगों लपाड़ियो की बात मत चलाइये बाबू जी। हम भी देखते हैं। सब साले मास्टरा को खुलेआम गरियाते हैं अमराई म बैठकर ताश फेंटते दुपहरिया गँवाते हैं, पढाई लिखाई का नाम नही। देखा देखी नाम लिखा लेने से ही कुछ नही होता। सुनर यादव का छोकडा तो पूरा लहेडा है। गाव भर की बहू बेटियो को देख देख कर सीटी बजाता फिरता है। यहाँ रख कर सिवा की सगत भी खराब करनी है क्या ? वही रह।

तिलकधारी बाबा के मना करने पर भी सुदरसन दूसरे ही दिन आरा जाकर बेटे को भारी भरकम उपदेश दे आए थे जितने बडे आदमी हुए हैं, सब गुदडी के लाल थे सिवा बेटे, अपनी लगन से उन्होंने दुनिया म नाम किया हम पुरानपथी हैं तो क्या हुआ ? हमारा मन साफ है। हमारी औकात ईमानदारी के बल पर टिकी है झूठ और बेईमानी के बल पर नही। तुम अपने को छोटा कभी मत समझना बबुआ !

सिवा की गिरती हुई सेहत बाबा के लिए गहरी चिन्ता का कारन बनी रहती थी छुट्टियो म गाव आता तो वे अपने हाथ से उसके लिए दूध का गिलास भरते। सिवा को अनपच की शिकायत रहने लगी थी। दूध का गिलास हाथ से टरका देता नही बाबा, इतना नही पिया जायेगा। उल्टी हो जायेगी।

बाबा ने खोद खोद कर उसकी खुराक आदि का पता लगा लगाना चाहा था

भोर म मुह जुठार किस चीज से करते हो बबुआ ?

पावरोटी के चार टुकडे और एक प्याली चाय मिलती है बाबा। कभी-कभी दो फुनके या चार कचौडियाँ ।

और दोपहरी का कलेवा' ?

—एक बजे भात दाल, एक सब्जी, भुजिया और पापड मिलता है। रात मे सब्जी रोटी ।

दूध दही, फल फरहरी कुछ भी नही ?

उसके लिए अलग से पसे लगते हैं बाबा !

बाबा की आँखो मे पडित जीवान द तिवारी की अधूरी साध खड खड बिखर गई थी

उपज बढती गई तो एक ट्रैक्टर खरीदेंगे तिलक बेटा ! अपना अलग बोरिंग बठाएँग, गेहूँ, मकई मसुरिया, बाजरा चना सब अपनी धरती से उपजेगा। एक पक्की खलिहान होगी, महाजन के हाथो नही सरकारी गोदाम वालो के हाथो अनाज बिक्री करेंगे। देख लेना पडित जीवान द के खेत मे उगी फसल किसानी प्रतियोगिता म पहला इनाम जीतेगी पहला पडित जीवान द तिवारी के सपने उन्ही के सामने सूखी धरती म झर झर बिखर गये थे। उनकी लम्बी बीमारी ने आधा खेत रहन पर चढा दिया था। रेहननामा लिखने वाले थे सिवदास मिसिर। वही सिवदास मिसिर, जिनको बाबूजी न बटी बचवा कहा था। बाबा के भीतर आज भी वह दिन दहकता रहता है बाबू जी अबुध बालक की तरह फूट फूट कर बिलख रहे थे मेरे स्वारथ के लिए मेरी माँ बेची जा रही है। मेरी दवा दारू के लिए बरसो से पाली पोसी धरती का सत्यानास हो रहा है। यह अधरम इस देह को फलगा नही बबुआ !

कलप कलप कर कितनी बडी बात कह गए थे बाबू जी

मास्तर कहते हैं कि बाभनो का जन्म बड़ा पावन होता है। उनके मुह

मे चारो वेदा के रूप म भगवान बसा करते हैं। अब वह जुग चला गया। देख लेना तिलक बेटा, जामना का अहंकार ही उनके नास का कारन बनगा। गगा की धार उल्टी बहेगी। मॅझलू छोटन् ने मेरी आँख खोल दी है।

पंडित जीवानन्द तिवारी की तीसरी पीढ़ी का अकेला पुरुष आज सहर म पुरुषारथ साधन गया है।

सिवदास मिसिर का वस भी समल की रुई सा देखते देखत उधिया गया। दो घूर जमीन क लिए भाई भाई म लाठी बजी थी। बूढ़े मिसिर जी की टँगरी खीच खीच कर दोनो लडको न उनकी गत बनाई थी और गाव की सारी जमीन हरखु सिंह क हवाल कर व आरा म बसने चल गए थे।

अब भी सुना है दोनो भाइयो क मुह दरोवल नही हैं। सादी याह हो हो या कोई साक काज, दोनो परिवार एक दूसरे का घर बरा कर ही नवता घुमाते हैं।

बी० ए० पास करन क बाद सिवा गाँव लौटा था, तब तिलकधारी बाबा ने दबे कठ से बात चलाई थी सिवा गाँव मे रहकर खेती बारी देखता। सहर म रहने का कोई फायदा तो नही है।

सिवा क बाप ने उनकी बात बीच म ही काट दी थी—

बाबू जी, फायदा कस नही है ? यहाँ पाँच बीघे की खती म खटना गोयठा म घी सुखान क बराबर है। सिवा पढ लिख गया। अब कही किरानी गिरी म भी लग जाए तो बरक्कत होगी। ऊपरी आमदनी का ढोल ढोल तो इस नौकरी म है ही। अफसर न बने, न सही। अफसरी इसके बस का रोग भी नही है। आगे पढन और सरकारी इम्तिहान दन क नाम पर ही गरदन झुका लेता है। आजकल तो सुनते हैं, सहरो म किरानीगिरी भी ब- जार पर है। बडे बडे अपसरो की चुटिया किरानियो की मुट्ठी म दबी होती है। बुरा नही रहेगा।

बाबा न समझाना चाहा था सिवा वह सब नही कर सकता, जिसकी आस तुम्ह है बेटा। सिवा की मिट्टी दूसरी है। छह पाँच की विद्या उसक जेहन म कभी नही पनप सकती।

इधर सुदरसन मे आन वाले बदलाव को देखकर भी बाबा चकित हैं। बेटे को क्या होता जा रहा है? गाँव म नए नए पैसे वालो को देखकर हर घड़ी डहकता रहता है। खेत बधार स एकबारगी मन उचाट कर लिया है उसने। कभी राजकिसोर सिंह का चरचा ले बैठेगा कभी मु नर जादव की बात उठा देगा राजकिशोर सिंह न पैसे बटोर कर सुनर जादव की साझेदारी म एक ट्रक खरीद लिया है बक्सर से आरा, आरा से बक्सर। कई *किसिम क माल की लदनी होती है। सुना है कि रात के अँधियार मे नशा*-पानी स लेकर और भी कई सामान सहरी अफसरो क लिए पहुँचाये जाते है।

रामपिरीत दुसाध की बड़की बेटी मदान निकली थी, रातो रात गायब हो गई। दुसाध टोले तो क्या, गाँव भर म सनसनी फल गई थी कि , लेकिन कोई कुछ नही बोलता। तिलकधारी बाबा की बूढ़ी हड्डियो म जोश उबलता है जाकर पंचाइत म बता आवें रजकिसोरवा और सुनरा के आदमी ने कमली को लेकिन नही अब जानते हैं कल का धुदीचुनवा आज राजकिशोर सिंह जी है हजार दस हजार का नही लाखो का मालिक और सुनरा ? पिछड़ी जात क नाम पर भोट गिनाकर सुनर जादव, एमेले उन गया है गाव का सर्वेसरवा ! पुलिस का बाप भी उसका कुछ नही बिगाड़ सकती, वह चाहे जो कुकरम करे।

बाबा ने अपने आपको सब तरह से काट लिया है। पेड़ की ऊभरी फुनगी पर बठे पक्षी की तरह वे सारी लीला देखते रहत हैं

राम दुआर बठि के जग का मुजरा ले त !

अन्त समय है। अब क्या राग, क्या विराग ? दुःख होता है सुदरसन का बावलापन देख देख कर ! अकेले मे सिर धुनता रहता है दिन भर जाँगर खटान का यही ईनाम मिला बाबू जी, कि हम अपने लिए, आपके लिए चाहे सिवा के लिए कुछ भी नहीं कर पाये। पचास बिगहे से घटते-घटते पाँच बिगहे की आस रह गई है और पापियो के दो तल्ले तीन तल्ले उठत जा रहे हैं। सहर से ट्रक पर सीमेंट बालू की ढुलाई हो रही है। ईंटा पाथने *वालियों के गीत हमारे कान चीर रह हैं। इस इमानदारी न हम तो सर*-बहारा बना दिया बाबूजी !

बेटे के कलेजे का दाह उसको नस नस को झुलसाता जा रहा है, बाबा सब समझते हैं। उनकी सारी जिन्गी इसी खीचा तान मे तो बीती है। सुदरसन का दद वे नही थाहेंगे तो कौन थाहेगा ?

आजकल सुदरसन के सार क्रोध का एक ही लक्ष है सिवा ! गाँव के पढनिहार लडको ने मिलकर सिवान पर एक क्लब खोला है। हर एतवार को आरा से सिनेमा दिखाने वालो पेटी आती है। सारा गाँव सिवान की ओर टूट पडता है। सिवा भूलकर भी उस ओर नही जाता। हरिबिलास और सरूप दोनो उसे बुलाने भी आये थे, उसने तबीयत खराब का बहाना बना दिया।

सुदरसन गिया वेताल होकर बेटे को जो सो बकने लगा किस बात का घम ड चढा है लाट साहब को ? ऊची जात का कि ऊँची विद्या का ? अरे बबुआ जी, आजकल इन्ही लोगो का गद्दी है। इनस मिलकर नही रहिएगा तो रसातल मे जान के लिए तयार रहिए।

बेटे की बडबडाहट सुनते ही बाबा खडाऊँ खोलकर चुपचाप सिवा की कोठरी मे घुस आए थे। बाप का लिहाज मानते हुए सुदरसन चुप्पी साधकर बाहर निकल गए यही क्या कम था ? बाबा ने औंधे पडे पोते को दुलार था क्या हुआ सिवा ? क्या हुआ बबुआ ?

सिवा की पोर फूटी थी क्लब म ऐम ही कसे जाऊँ बाबा ? सरूप और हरिबिलास ने दो दो सौ रुपया का च दा दिया है ! गाव म दूसरे लडको ने भी जिसस जो बना दस पचास दिया ही है। मैं

तिलकधारी बाबा की बूढी हथलिया ने पोते की पीठ पर थपकी दी थी नि श द स्वातवना होसला रखो बेटे, होसला रखो !

गाँव म रह कर इधर सिवा खेतो म थाडी रुचि लेन लगा है। बाबा उसक कधे पर हाथ धर कर एक खेत स दूसरे खेत तक जाते हैं। सारा नक्शा उसके दिमाग म उतार देना चाहते हैं देखो बबुआ, वह सामन जो बसवारी है न, उस पश्चिम कोन स लेकर पोखरा के किनारे वाले पुरुब कोन तक का यह पूरा चक हमारा है। बीच वाली यह जमीन भी कभी हमारी ही थी, अब

हरखू सिंह की है। बाबू जी के दवा दारू की मजबूरी थी। हरखू सिंह ने देख भाल कर अच्छे अच्छे चक ही चुन लिये।

खैर ,इधर आओ बबुआ, सरकारी बोरिंग के पास वाली क्यारी से लेकर चरागाहो वाली जमीन क सटे तक हमारा ही हिस्सा है । और यह रहा आम का बगइचा बीस पच्चीस मेड बचे हैं। सेवा के बिना सब तहस-नहस हो गया।

सिवा बाबा के साथ खेत की मेड पर घूमता रहे, सुदरसन को यह पस द नहीं था। एक दिन बाबा पोते को हलवाही विद्या सिखा रहे थे, यह देखकर सुदरसन बमक उठे थे बारह बरस का कागजी नान किसी काम का नहीं आया न अब हल की मूठ धरी जा रही है । बाबू जी, इसका मन इधर मत खींचिए । वरना यह दोनों ओर से जाएगा।

आज तिलकधारी बाबा को मचान से उतरने की इच्छा नहीं है। सिवा का सोच होता है तो देह की सारी सक्ती ही जसे निचुडने लगती है। कलेजे म गजब की पीडा उठती है दोनों हाथो से दबा कर जस कोई उनका कलेजा दूह रहा हो। मूल से सूद ज्यादा प्यारा होता है न । सुदरसन सिवा को अभी डाँटता डपटता रहता है, जब पोते का मुह देखेगा तब सारी डाँट-डपट धरी रह जाएगी। बाबा सिवा के माथे मऊर देखना चाहते हैं राम का दुलहा भेस । देह स सिवा लाख दुबला लगे, मुह की आब सचमुच दूर से ही देखने सराहने जोग है। कनिया का रूप रंग हूबहू बेटे म ढल गया है।

सुदरसन का मन तो हमेशा दूसरी ओर ही भागता है नौकरी मिल जाए तब शादी वादी की बात सोची जाएगी। कमासुत लडके की माग बेसी है। दहेज के पसो से हरखू सिंह के कब्जे म पडी धरती छुडाएँगे। फिर खेती का अधिया पर ब दोबस्त करके सब लोग सहर चलेंगे। साल छह महीने पर आकर देख सुन लिया जाय, यही बहुत होगा।

मचान पर बैठे तिलकधारी बाबा का मन कहाँ कहाँ भटक रहा है ? सिवा के लौटने का वखत हो रहा है। आखिरी बस छह बजे दुखिया के इनार पर रुकती है। ठंड बढने लगती है। बाबा अंगुलियो पर गिनकर हिसाब

लगाते हैं कुआर बीतने मे नो दिन ओर बाकी है। ठडी बयार देह को छू छू कर सिहरा जा रही है। सिवा लौटता ही होगा। दो बरस हो गए उस गाव मे बठे हुए। दिन भर हिंदी अंग्रेजी अखबार के पन्ने उलटता रहता है। लिफाफ मे भर भर कर अरजी भेजता रहता है। सुदरसन का धीरज अब चुकने लगा है दो बरस हो गए चिठियाँ करते करते ! सकडो रुपये तो ससुर अरजी लिखने मे ही खरच हो गए। भगवान भी नहीं पसीजता है।

सिवा ने बाबा को बताया था एक नोकरी के लिये एक हजार अर्जियाँ पडती हैं बाबा ! उसम भी हजार तरह की धक्कम धुक्की। सरकारी कानून के हिसाब स पिछडी जात वाला के लिए जगह रोकी गई हैं। हर नौकरी में पहला नम्बर उनका होगा। मेरी डिग्री को कौन पूछता हैं बाबा ! हमारी कोई ऊँची जान पहचान नहीं है इसलिए काबिलियत भी नहीं है।

सिवा की आवाज मे उसकी पूरी जमात का दद उमड चला था। सिवा चुप बठा आसमान की ओर निहार रहा था। वह घडी अब भी बाबा की छाती मे सिमटी है।

बाबा भरमने लगते हैं, उन्ह भान होता है, जस गाँव जवार स निकल कर सिवा जसे हजारो लडको की जमात उनके सामने खडी हो गई है सूनी आखे ! सूखे चेहरे ! बाहे पसार कर वे सब सुख चन की जिन्दगी के निहोरा करते जा रहे हैं हे भगवान !

हे माँ का ली ई ई !!

या अल्ला ,

या मेरे मौ ला !!

ओ मसीहा !

लाख लाख सपने अनगिनत निहोरे ! मजबूरी मे झुके हुए कच्ची वय के इन बालको की कतार सामने स गुजर रही है। सिर नीचे, बाँहें फली हुई।

हवा मे तलवार भाँजता यह किसका हाथ सामने लहराता आ रहा है ?

खच खच, खचा खच !!

एक एक करके सारी बाह कटती जा रही हैं, सिर धड से अलग छिटकते जा रहे हैं।

लोहू का समुन्दर ! सब तरफ लो हू !

सब कुछ लोहू की बाढ मे बिला गया।

एक घुटी सी चीख निकल जाती है। बाबा थरथराते हुए चौंक कर उठ बठते हैं छाती पर हाथ रखकर मचान पर ही निंदिया गए थे ? पण्डित जीवानद तिवारी की चेतावनी को कस भुला बठे मचान पर कभी नही सोना चाहिए बटा !

किसान का धरम पिता का धरम होता है, एक छिन के लिए भी पलक नही सटे ! फसल की रखवाली के लिए रात दिन एक करना पडता है, तब कही चिरई-चुरमुन, चोर सियार से रच्छा होती है !

सुरज का लाल चक्का दूर बँसवारी मे अँटक गया है। झुरमुट बाँधकर, गलबाँही दिये खडे हरे लचकत बाँस रतनारे हो रहे हैं, सब ओर ललाई है। बाबा को मटिया धोती टह टह लाल लग रही है। वसा ही रग गौन के साल का पहला फगुआ था सुदरसन की माई ने लाल अबीर की झोरी ही उन पर उलट दी थी।

इनार की कच्ची मुडर और मचान के नीचे की भुरभुरी माटी सब कुछ लाल हो गया है, एकदम लाल—ल ! भरम वाले लोहू के समुन्दर की तरह तो नही ? नही नही ! बाबा एक बार फिर चिहुँक उठते हैं ! लाल चक्का नीचे धँसता जा रहा है । थोडी ही देर म बेर डूब जायगी।

बस आ गई ! सिवा कहाँ है ? नही उतरा ? नही नही , है ! सबसे पीछे है ! बाबा कस भूल गए ? सिवा की तो पुरानी आदत है

सारे लडके दखिखनी मेड पकड कर गाँव की ओर बढ़ गए ! अकेले से सिवा उनकी ओर चला आ रहा है।

बाबा मचान पर सतक होकर बठे हैं। सिवा क्या सुनाएगा? कसी खबर होगी?

चेहरे को देखकर कुछ भी तो पता नही चलता। जसा गया था, वैसा ही आया है।

बाबा नीचे पर लटका कर बैठते हैं। सिवा के नजदीक आते ही उसकी पीठ का सहारा लेकर नीचे उतर जाएँगे। फिर रास्ते मे बातचीत होगी।

सिवा बाबा के पर छूता है।

गुमसुम कोई बात नही।

बाबा उसका हाथ पकड कर चुपचाप आगे बढ रहे हैं आहिस्ता आहिस्ता।

एक एक कदम भारी पड रहा है।

एक एक सांस इतजार कर रही है।

सिवा क्या कहगा? सिवा कुछ नही बोलेगा क्या?

खेत की मेड पीछे छूट गई। दोनो सिवान तक पहुँच चुके हैं।

बाबा, एक बात कहूँ?

बाबा की सारी देह सुन रही है, बाबा चुप है।

आप बाबू जी को समझाईए न बाबा। मेरी नौकरी करने की तनिक भी इच्छा नही। मैं भी खेती बारी मे लगू तो कोई हज होगा बाबा?

इस बार भी मुझे नौकरी नही मिली बाबा—! सरूप ने किरानी को हजार रुपए पहले ही दे दिए थे। उसका काम बन गया।

अधेरे की परत दोहरी तिहरी हो गई लगती है। बाबा तिलमिला जाते है।

ठोकर लगी क्या बाबा?

चलते चलते सिवा बाबा को थाम लेता है। बाबा की कांपती हथेली ऊपर उठती है सिवा की ठुडडी, उसके गालो को छूती हुई आंखो के नीचे जा ठहरती है।

नही बाबा, मुझे कोई तकलीफ नही है। मैं रो नही रहा हूँ बाबा ।

कैसी गहरी समझदारी आ गई है सिवा में ? इसकी दूध की दतुलियो के टूटने का दिन अभी अभी ही बीता है।

आरा म मेरे एक पुराने गुरु मिले थे बाबा ! सब कुछ सुन कर उन्होने कहा—पाँच बीघे को खेती कम तो नही ! एक बीघा भी हो तो किसान अपनी जिंदगी बना सकता है, शत यह है कि वह पूरी मेहनत करे !

एक और एक मिल कर ग्यारह होते हैं। धीरे धीरे ही तो बरक्कत होती है।



मुझे बडी लाज लगी बाबा, जब गुरुदेव ने कहा—घर की अन्नपूर्णा को छोड कर बाहर भटक रहे हो बेटा ? अरे, अब तो वह जमाना आ रहा है जब एक इच धरती क लिए भी लूट मच जाएगी। कृषि विभाग के अफसरो से उनकी जान पहचान है बाबा, वे अच्छे बीज और खाद वगैरह की मदद करते रहेंगे ! तब तक जब तक कि

बाबा के गालो की झुरिया भीग रही हैं, भीगती जा रहा हैं !

आँसुओ की यह असहाय बाढ कैसी ? उ ह तो हसना चाहिए

पडित जीवानद तिवारी की आत्मा यही कही मँडरा रही होगी। उसन सब सुना होगा। अब वह तर जाएगी, प्रेत जोनी से छूट जाएगी ।

लेकिन कनिया ?

कनिया की साध ही रूप बदल कर सिवा के कठ म उतर आई है क्या

किसान की भी इज्जत है बाबा उसके हाथो म भी जम है—माटी को माता बनाने का जम ! आप बाबू जी को समझाइए न बाबा !

सुदरसन ने हथियार डाल दिए हैं । सिवा कल से समहत करेगा, हल की मूठ धरेगा । बाबा मचान पर बठे बैठे सपना रहे है ।

बाबा का मन हरियरा गया है, जीने की आस बढ़ गई सी लगती है।

सिवा धोती की खूट कमर मे खोस कर खेत म उतर पडा है।

बाबा अभी जिएगे ।

रात मे सब कुछ सुन कर सुदरसन ने एक लबी साँस ली थी—हम सही माने मे सरवहारा हो गए बाबू जी ! सिवा को माई का सपना अधूरा ही रह गया ! अब राजकिसोर सिह ठठा कर हँसेगा और हम

बाबा नही मानते । वे सरवहारा हो ही नही सकते । कसे हो सकते हैं ? सिवा के रूप मे पडित जीवानद तिवारी को साथ ने नई जिनगी जो पाई है । मचान लेटे बाबा की पलकें झपक जाती है ।

शरशय्या पर लेटे भीष्म पितामह की तरह तिलकधारी बाबा की प्रतीक्षा भी जीवित है—जब तक सिवा जीवन युद्ध मे विजयी न हो जाए , तब तक के लिए !



रात से पहले/शुभदा मिश्र

मगर उस दिन उसे बीजी से बड़ी कोफ्त हुई उस दिन वह बीजी के साथ सिनेमा गई हुई थी। इंटरवल में जब रोशनी हुई तो वह सन्न रह गई। उसके ठीक सामने की सीट पर सरदार रनजीत सिंह बैठे थे उसी लड़की के कंधे में बांह रखे। रोशनी होते ही उन्होंने हाथ हटाया और पलटकर देखा। बड़ी सहजता से उठकर उन लोगों के पास आये। उसे झुक के नमस्ते किया और बीजी से बातें करने लगे। लड़की ने भी पलटकर देखा और वहीं से जोरदार नमस्ते ठोका।

☐ शुभ्रा मिश्र

रात से पहले

जरा सा जोर लगते ही पुरानी साड़ी के जैसे चीथड़े-चीथड़े उड़ जाते हैं, वैसे ही चीथड़े चीथड़े उड़ रही थी उसकी शाम। मगर वह सारे चीथड़े बटोर-बटोर कर सी रही थी कि एक मुकम्मिल शाम उसका भी हो जाय।

उसके होंठों में एक आहत हँसी है हमेशा ही चिपकी रहती है होंठों से यह हँसी और वह चीथड़े चीथड़े बटोर रही है। सीना उसे आता है। चीथड़े सीने का दीर्घ अभ्यास है उसे।

तुम्हें शायद हमारे पास बैठना पसन्द नहीं आंटी अपने चश्मे के भीतर से उसे गौर से देख रही हैं।

अरे नहीं नहीं आंटी वह पानी पानी हुई जा रही है आपको ऐसा क्यों लगा भला—

बार बार बुलाने पर भी नहीं आती हो।

अरे हम बूढ़े लोग हैं अखिल मायूसी से कहते हैं सहसा ही उन्हें कुछ याद आ जाता है। उसे गौर से देखने लगते हैं कल तुम कहीं जा रही थी क्या यू वयर लुकिंग प्रेटी चार्मिंग।

जी हाँ, वह जमीं शोखी भी ओढ़ लेना चाहती है—जा रही थी एक खास जगह

कहाँ कहाँ—अखिल जैसे बेचैन हो उठते हैं।

वह हँसने लगती है एक ब्वाय फ्रैंड से मिलने।

अखिल मुँह लटका लेते हैं मेरा मजाक बनाती है लड़की।

सचमुच वह मजाक ही बना रही थी। जाने क्या अखिल शुरू से ही यह जानने के फिराक में थे कि उसके कोई ब्वाय फ्रैंड तो नहीं

से प्यार तो नही करती। पहले तो यह बात उस बेहद चुभती थी मगर बाद मे खीजकर वह भी कहने लगी कि उसका एक ब्वाय फ्रेंड है। इस बात से अकल बेहद उद्विग्न रहे। खोद खाद कर पूछते रहे किस किस दिन मिलने जाती हो—कहा मिलती हो—पहचान कब से है—शादी करोगी क्या—इतने दिन से जा क्या नही रही हो—आखिरकार वे नाराज हो गये और सभी से बताने लगे—सुमिता कहती है कि उसके एक ब्वाय फ्रेंड है पूछता हूँ, कहाँ है, कौन है, तो कुछ नही बताती।

नीचे के फ्लेटस वाले सरदार दलजीतसिंह और बनर्जी दादा पहले उसका मुह देखने लग थे फिर अकिल का फिर हँस पडे थे अर वह आपको बना रही थी अकिल। बहुत सीरियस मजाक करती है।

अकिल उस दिन बहुत बोर हुए थे।

मगर आज अकिल की नजर म फिर गिला उभर आना है—दिस इज वेरी स्ट्रेंज व रहते हैं यू आर यग एड ब्यूटीफुल एड यू हव नो ब्याय फ्रेंडस।

वह फिर हँसने लगती है मगर आप परेशान क्या हैं अकिल। क्या आपकी बेटी के ब्वाय फ्रेंड्स थे।

अरे उसके ब्याय फ्रेंड्स की मत पूछो—अकिल उमग मे आ जाते हैं—हाई स्कूल मे भी तभी से उसके ब्वाय फ्रेंडस थे। तुम्हारी आटी तो बहुत डरती थी। मगर हम तो कहते थे ठीक है, रहने चाहिए ब्वाय फ्रेंडस। हाँ पर टस के नालिज म होने चाहिए। फिर वे बडे मनोयोग से सुनाने लगते हैं कि एक ब्याय फ्रेंडस ने कितना सिर दर्द कर दिया था उसके कारण उन्हे अपना ट्रांसफर आगरा से कानपुर करवाना पडा था। मगर वह वहाँ भी चला आया था घर ढूढता ढूढता भूखा प्यासा। आधी रात से दरवाजे मे बैठा था। सुबह तडके जब मार्निंग वाक के लिए उन्होने दरवाजा खोला तो देखते हैं टिकटिकी लगाए दरवाजे को ही देख रहा था। बता नही सकते क्या क्या मुश्किलें आयी हम लोग तो अरेस्ट होते होते बचे। हो कमिटड सुईसाइड

इट वाज़ वेरी ट्रेजिक आँटी का खूबसूरत चेहरा भी सवेदना म हिलता है उसकी तरफ देखकर कहती हैं सुमिना समझदार लडकी है—इन सब चक्करो मे नही रहती।

आयम योर ब्वाय फ्रेंड क्यो, है न अंकिल उसके कधे पर हाथ रख कर कहते हैं—मुझसे तुमको कोई खतरा नही।

वह अंकिल का हाथ हटा देती है। उस अंकिल की ऐसी हरकतें जरा भी पसद नही। मगर अंकिल को शायद इसी सबकी आदत है।

देखो यह मेरी गल फ्रेंड है वह आगे की ओर देखत हुए हँसते हैं फिर उसकी ओर देखकर कहते है शी इज वरी जेलस ऑफ यू।

उसका चेहरा फिर जख्मी हो गया है। आँटी उ ह झिडकती है डोंट डिस्टर्ब हर।

वह हँसना चाहती है मगर उसे लगता है कही रो न पडे।

और शाम फिर चीथडे चीथडे हो जाती है।



अभी कुछ दिन पहले तक ऐसा नही था। शामे उसकी अपनी थी। चाची अपने स्कूल से आती चाचा आफिस से। चाय पीकर व थोडा आराम करते। शाम ढलते ही क्लब चले जात। सूनसान घर मे वह अकेली होजाती। यह सामने वाला फ्लट भी बद पडा था तब। इन दोनो फ्लैटो क बीच म सिर्फ यह छोटी सी छत थी। इसी छत म कुर्सी डाले वह बठी रहती। निपट अकेली। अपन आनस जूझते पछियो के झुड कलरव करते हुए सिर के ऊपर से गुजरत रहते। मनीपियो की तरह खडे गगनचुम्बी वक्ष धीमे धीमे बडे मनोयोग से सिर हिलाते। रात की काली चादर फैलने लगती। तारे छिटक जात दरख्तो की आट स चाँद का गोला झाँकने लगता वह अपने आप मे डूबी बठी रहती अपनी दुनिया मे डूबी जब तक कि चाचा की गाडी की आवाज न सुनाई दे।

मगर अब उसकी वे लबी लबी कुआरी शामे छिन गई थी। सामने के फ्लट मे जुनजा दपत्ति आ गय थे। मि० आर० एन० जुनेजा इनकम टैक्स

आफिसर। पचपन की छूती उम्र, मिलनसार, दिलचस्प बातूनी छोटे बड़े हर किसी का हाथ जोड कर परम भक्ति भाव से नमस्ते करते। बड़े ही नाटकीय लगते। शानदार फर्नीचर। बड़ी बड़ी भव्य कालीनें, फ्रिज, टी॰ वी॰ रेशमी पर्दे सारा घर ही जगमगा उठा था। गोरी चिट्टी सुनहरे चश्मे वाली जुनेजा आंटी, खूबसूरत साड़ी मे चलती फिरती महारानी सी लगती। दबे पाव यह भी खबर चली आई थी कि जुनेजा साहब पक्के घूसखोर थे। पिछले कई सालो से सस्पेंड थे। बहर हाल इस समय तो उनके रईस आसामी तोहफे लिये, विनम्रता की मूर्ति बने, उनके चक्कर लगाते। उनकी बीबिया आंटी के आगे जबरन हिनहिनाती। आंटी उन महिलाओ को ज्यादा मुह न लगाती।

शाम जुनेजा अंकिल आंटी के साथ ही गुजारते। सामने वाले छोटे से छत म जहाँ, कल तक सुमिता का एक छत्र साम्राज्य था, शाम होते ही आरामदेह कुर्सिया डाल दी जाती। मेज पर चाय लगा दी जाती। अंकिल आंटी वही चाय लेते। घटो गपियाते। एकाध पग चढा भी लेते। इस सारे समय वह अपने घर के भीतर ही घुसी रहती।

उसका नाम तो अंकिल का पहले दिन ही पता लग गया था शीघ्र ही यह भी पता लग गया था कि वह शाम को घर म अकेली ही रह जाती है। वे बेचन स हो उठे। उस दिन पहले उनका नौकर आया और बोला दीदीजी, आपको साहब और मेम साहब चाय पीने बुलाते हैं।

वह सकपका गई। वह उन लोगो के बीच बैठना नही चाहती थी साच म पड गई। कि अकल भी आवाज देने लगे—भई सुमिता, आओ भी, क्या कर रही हो हम लोग इतजार कर रहे हैं।

वह परेशान हो उठी बदन पर कपडे मले कुचले बालो मे कघी नही —चेहरे पर मुदनी कही आंटी झांक न दे भीतर।

झटपट मुह धोती है कपडे बदलती है बाला मे कघी फेरती है चेहरे पर मुस्कराहट ओढकर बाहर आती है। दयनीय सा स्वर हो उठता है उसका—दरअसल इस वक्त मुझ खाना बनाना रहता है अंकिल।

अरे तो चाय तो पीलो अंकिल इतना कह रहे हैं आंटी बडा मुह बना से चाय का प्याला बढ़ा देती हैं चाय पी लो फिर चली जाना।

मगर जल्दी जाना हो पाता है क्या ? विवश सी वह बैठी है बलात् मुस्कुराती। अंकिल बातें छेड देते हैं। अपनी समय से मजेदार बातें कर रहे व अपने पहले प्रेम की अपने विवाह की विगत प्रेमिकाओ की आंटी मुस्कुरा रही हैं वह हँस रही हैं उसे हँसना ही है।

आंटी कहती हैं देखो तुम्हारे अंकिल कितना हँसाते है अच्छा लगा न हमारे साथ बैठकर। बेकार घर मे घुसी रहती हो।

ढेरो बातें करके अंकिल उससे भी ढेरो बात उगलवा लेते हैं परेन्ट्स हैं अच्छा अच्छा इन लोगो के पास बचपन से रही हो अच्छा—फिर इनकी भी लडकी हो गई क्या लडकी की शादी हो गई। तुम बडी हो और तुम्हारी शादी नही हुई।

नही अंकिल—वह हँसती है आपने लिलि को देखा नही—वह तो बहुत सुदर है। जब वह इटर मे थी, तभी कितने ही लडके उससे शादी करना करना चाहते थे वही लडके छाँटती थी, बडी तेज थी

और तुम तुम नही छाँटती

वह हँसने लगती है मेरी सूरत देख रहे हैं मुझे तो कोई घास भी नही डालता।

अंकिल फिर बढ चढ कर उसके सौदर्य की तारीफ करने लगते हैं। आँटी भी करती हैं सुदर तो हो ही एक कशिश है तुमम।

उसे यह सब अच्छा नहीं लगता।

तुम अपने मम्मी पापा के पास नही जाती अंकिल उसे फिर खोदने लगते हैं

वह कुछ नही कहती। चुप रहती है। भीतर का रुदन गले तक भर आता है। आवाज फँस जाती है।

दिज इज वरी बड—आंटी अंकिल को झिडकती हैं। आप हमेशा पर्सनल पाईन्ट को टच कर देते हैं

वरी सारी सुमिता वरी सारी माई चाइल्ड अंकिल। हाथ बढाकर बडी मुहब्बत से उसके आँसू पोछने लगते हैं। फिर जैसे विभोर होकर एकदम छाती से लगा लेते हैं डोन्ट क्राई माई चाइल्ड

वह बमुश्किल अपने को छुड़ाती है मैं ठीक हूँ अंकिल, मुझ कुछ नहीं हुआ है

हर बार ऐसा ही क्या होता है पहले अपनापन, फिर सहानुभूति फिर कमजोर नसों का टटोलना—फिर आघात करना"

शाम ही नहीं सुबह भी छिन गई थी अब तो। पहले वह अकेले ही टहलने जाया करती थी अपनी ही परेशानियों में डूबी हुई—भविष्य का अज्ञात दरवाजा टटोलती हुई सघन वादियों में दूर तक अकेले ही भटका करती थी। अपनी इस भटकन में उसने अब तक किसी को शामिल नहीं किया था। कोई आगे आया भी नहीं था शामिल होने। जैसे ही उसे पता चला—अंकिल भी जाते हैं सवेरे टहलने। उसने जाना ही बन्द कर दिया। दो-चार दिन तक तो वह गई ही नहीं। मगर चाचा जी ही बातचीत में कह बैठे थे। अच्छा आप भी जाते हैं टहलने हमारी सुमिता भी जाती है हमसे तो उठा ही नहीं जाता। बस, अंकिल चूकने वाले कहाँ थे सुबह ही सुबह दरवाजा खटखटा दिया सुमिता बेटे, उठ गई।

जी वह मन ही मन कोसती हुई वह बाहर आ जाती है। एकदम अच्छा नहीं लगता कि सारे मुहल्ले की नींद खराब हो।

सूट-बूट और छड़ी से लैस अंकिल शान से चलते हैं। रास्ते भर अनवरत बोलते रहते हैं। जानती हो मैं बचपन में बहुत सुन्दर था मुझे कुछ लड़कों ने मोलेस्ट किया। कभी कहते—मैंने अपनी वाइफ का प्रेम पत्र पकड़ा था।

कभी कहते—देखो ये सामने वाली कोठी देख रही हो न इसका मालिक बेहद रईस है ऐसी ही तीन कोठियाँ और हैं इसी शहर में। उम्र साठ साल हो रही है। मुझसे पाँच साल बड़ा है और अभी एकदम जवान लड़की से शादी किया है। बूढ़ी के लिए अलग घर ले दिया है—बच्चों की सबकी शादी कर दी। क्या है जब पैसा है तो लाइफ इनज्वाय करेगा ही।

वह चुपचाप चल रही है। बूढ़ा ऐसे ही बकता रहता है, बके। तभी अंकिल उसे गहरी दृष्टि से देखते हैं—मगर ऐसा नहीं करना चाहिये है न! सोसाइटी में इज्जत नहीं रहती। अब मान लो मैं दूसरी शादी कर लूं तो

सोसाइटी उतना रिसपक्ट नहीं देगी—बुढ़ी का क्या है अलग रख सकता हूँ।

वह एकदम हे हे करके हसने लगी अंकिल, आप दूसरी शादी का सोच रहे हैं।

अंकिल की आँखें खुशी से चमकने लगी—चेहरा दपदपा उठता है। एकदम से लपक कर हाथ पकड़ लेते हैं उसका। कई पल अभिभूत से खड़े रहते हैं ब्हाई डिड यू लाफ तुम हसी क्यो ? क्यो हसी ?

वह झटके से हाथ छुड़ा लेती है अंकिल आप क्या बात कर रहे हैं आपको मालूम है अगले साल आप रिटायर हो रहे हैं।

उससे क्या होना है—वे आवेश में हैं—आई हैव डन माई ड्यूटी टू माई फमली। लड़की की शादी कर दी। लड़के की हो जायगी। बुढ़ी के लिए जनम भर किया है। मेरे लिये किसने क्या किया

वह फिर हे हे कर हसने लगती है—आपका दिमाग खराब हो गया है। अंकिल

अंकिल एकदम उदास हो जाते हैं बेहद उदास—हाँ मैं क्या शादी करूँगा अब। मेरी ऐसी किस्मत कहाँ मैं तो मजाक कर रहा था।



शामें और सुबहें तो छिन ही गई थी उसका रहा सहा समय भी उनकी छीना झपटी मे चापन्न हो रहा था। कभी पिकनिक मे जाने के लिए आकर खुशामद कर रहे हैं, कभी किसी स्वामीजी के दर्शन करने जाना है तो कभी किसी माता जी के।

इन विभूतियो के सामने पहुचते ही अंकिल तत्क्षण जमीन पर पसर कर साक्षात् दडवत करते। आन्टी भी झपाचप पैर छूतीं। वह अवाक खड़ी देखती ही रह जाती। तब स्वामीजी या माता जी स्वय ही मुस्कुराकर उसे पास बुलाते। उसके सिर पर हाथ फेरते—प्रसाद देते कभी लड्डू कभी पेड़ा कभी पूरा का पूरा मिठाई का डिब्बा।

अंकिल, आटी अभिभूत हो जाते। कहते कि उसका जरूर कुछ महान कल्याण होने वाला है—स्वामी जी ने उसे स्वयं बुलाकर आशीर्वाद दिया। चार साल तक अंकल की नौकरी में खतरा रहा—इन्हीं लोगों ने सभाला। ये सब कुछ कर सकते हैं।

मेरा कल्याण वह हँसने लगती क्या मुझे नौकरी मिल जायेगी।

इधर घर के भीतर की चख-चख बढ़ती ही जा रही थी। चाची उन लोगों से खूब हँस कर बतियाती कहती-क्या है, ले जाया कीजिये इसका मन भी बहलेगा। घर में काम ही क्या है—पर भीतर आती तो गुस्सा उस पर उतारती। मिथ्या दोषारोपण और बात का बतंगड बनाने की उनकी पुरानी आदत थी। भले ही स्कूल की प्राचार्या थी। फ्लैट लगा होने के कारण वे पहले की तरह गरज न पाती। धीमे धीमे कुछ स्वर में बड़बड़ाती।

झूठी हँसी हँसते हँसते वह उसका प्याला भर गया था काश। उसे नौकरी मिल जाती। वह सचमुच खुश हो सकती। सचमुच हँस सकती। इस क्षुद्र पाखंडी माहौल की गिरफ्त से कहीं दूर भाग सकती।

□

उसकी इन्हीं सब परेशानियों को देख रही है सरदारनी भाभी अरसे से। इसी से बीच बीच में टोकती रहती है अब आप सैटल हो जाइये दीदी।

वह चुप रहती है। बुझी बुझी आँखों से शून्य में देखती। क्या वह स्वयं नहीं चाहती सैटल होना। मगर हो कैसे। लगता है दसों दिशाओं में नगाड़े बज उठे हैं दुंदुभि बज रही है घोषणा हो रही है अरे यह लड़की, यह घर द्वार यह व्यवस्थित जीवन तुम्हारे लिये नहीं है नहीं है नहीं है---

नहीं है यह सत्य उसने स्वीकार कर लिया है। सिर्फ भाभी की ओर देखती है क्या ये खुद सचमुच सैटल हो गई है।

कई बार सोचा है उसने—जाकर भाभी से सही सही बातें बता दे। विशेषकर किसी दिन कुछ देख लेती है तो स्वयं को रोकना उसके लिये बहुत मुश्किल हो जाता है। मरी हुई वह जाती है भाभी के पास कहने। मगर क्या कहे वह ! भाभी तो मशगूल है कभी न खतम होने वाले कामों में।

दुबला, गोरा शरीर, सुता हुआ चेहरा, बदन पर पुरानी धुरानी सलवार कमीज सलवार के पायचे ऊपर किए हुए बडे मनोयोग से वे पर्दे धो रही है या मसाले साफ कर रही हैं या सरदार जी के जूतो मे पालिश कर रही है।

कभी कहे वह उनसे—भाभी, मैंने आज भाईसाहब को मजू के साथ फिर देखा।

कुछ नही कहती वह। मरी हुई बैठी रहती है। गुडडू के साथ खेलने लगती है। चाय पीकर बिना कुछ कहे चली आती है।

कभी भाभी ही धीरे से कह बठती हैं दीदी, वो नागपाल लोग तो अभी भी तैयार हैं।

उसके भीतर का सारा तूफान जाने कहा चला जाता है। एक गहरी उदासी उसे घेर लेती है।

पता नही कसे देख लिया था नागपाल लोगो ने उसे। पता नही क्या देख लिया था। उस दिन वह सरदारनी भाभी के घर ही बैठी थी। गुडडू से खेल रही थी। तभी एक प्रौढ दम्पत्ति आये थे ऊचे पूरे, गोरे चिट्टे श्री एव श्रीमती ज्ञानेश्वर नागपाल भाभी ने बडे आदर से बैठाया और पजाबी मे उनसे बातें करने लगी। उसने समझा भाभी के मायके के लोग हैं। सो किचन मे जाकर खुद ही चाय बना लाई। वह भी शामिल हो गई वार्ता मे। नागपाल दम्पत्ति शेर शायरी के बडे शौकीन थे। खूब शेर शायरी चलती रही शाम तक। दलजीत भाई साहब भी आफिस से आकर शामिल हो गये थे। फिर चाचा जी भी चले आये थे। बडा मजा रहा। जाते समय नागपाल अंकिल उसकी पीठ थपथपाकर गये थे। बाद मे एक दिन सरदारनी भाभी ने जाकर चाची जी से बताया था—वे लोग अपने लडके के लिए सुमिता दीदी को चाहते हैं। लडका बम्बई मे इजीनियर है। मैंने देखा है बहुत सुन्दर है। चाचा जी को उचित लगे वो नागपाल अंकिल आकर उनसे बातें करेंगे। कोई डिमांड नही। लडकी चाहे एक साडी में भेज दें।

सुनकर वह हतप्रभ रह गई थी।

मगर चाची जी का मुह विकृत हो गया था। वे सरदारनी भाभी को कसकर सुनाती रही थी दवि दर दुमा य बात आखिर कही कैस। असल जुझौतिया हैं हम लोग और इन भगोडिया को बटी देंग। न इनकी जात न इनका खानदान। कल य रिफ्यूजी बनकर शरण मांगन आये, आज दो पसा होते ही हमारी बटी मागने लग

सरदारनी भाभी बेचारी बार बार मांफी माग रही थी।

उन दिनो घर म बीजी आई हुई थी। बीजी यानी सरदार दलजीतसिंह की माँ। बीजी घनघोर बातूनी महिला थी जिस पकड लेती। उसका जल्दी पीछा न छोडती। इसी स सरदारनी भाभी साम से कोई बात ही शुरू न करती। जब वह सरदारजी क घर जाती तो देखती कि भाभी गुड्डू को लिय घर के भीतर जाने बगा बगा कर रही हैं। बरामदे मे पड़े पलग पर बीजी लेटी हुई हैं कुछ गुस्सा और कुछ बेचन सी। उस दखते ही बीजी क चहरे का सारा गिला जाता रहता है। चेहरा चमकन लगता ह ओये सुमिता, तू कहाँ रहती है स उनकी बात जो शुरू होती है तो पाँच बजे शाम तक खत्म हो न होती। व बार बार इस बात को दोहराती हैं कि खाली ही तो बठी रहती हो। आकर मुझ स गपशप किया करो। मन बहलेगा।

जितनी बार वह उठना चाहती है, बीजी व्याकुल सी हाथ पकड कर बठा लेती हैं। ओय क्या करेगी खाली घर म। चाची तेरी पाँच बज से पहल नही आन वाली।

कई बार वह हाथ छुडा कर किसी तरह भाग ही जाती है। मगर एकाध बार जब वह फिर लौटकर आई तो देखा बीजी बेहद उदास बेहद दुखी सी बठी हैं—उपेक्षित और निराश्रित सी। उसका दिल पिघल गया। वह फिर बठ जाती है। बीजी फिर चहकने लगती है।

बीजी को बात करन के अलावा दो और शौक हैं। लाटरी टिकिट खरीदने का और सिनेमा जान का। लाटरी टिकिट बीजी इस आस स खरीदती थी कि कभी एकाध लाख रुपय का इनाम निकल आय, तो बुढाप मे अपने लिये दो कमरे का एक मकान बनवा लेंगी और अकेली अलग रहगी

सरदार जी मेरे लिये सब कर गये जो, सिर्फ एक झोपड़ी नही कर गये। जिस बेटे के पास जाती हूँ, उसी की बीवी अजीब गुस्सा गुस्सा दिखाती है। फिर पर्दे की तरफ इशारा करके कहतीं—चार घण्टे हो गये जी अब तक एक बार झांक कर भी नही देखा कि बीजी हैं कैसी। उन्हें किसी चीज की जरूरत तो नहीं। जी रही हैं कि बैठे बैठे मर गई। घर। यह बचारी कम से कम मुंह से कुछ बुरा नहीं बोलती। दिल्ली वाली तो जो बात बेबात टर टर सुनाती है बीजी खाली बैठी बैठी क्या चबड़ चबड़ बतियाती रहती हो बच्चों के लिये स्वैटर ही बना डालो। लोजी, मेरे हाथों में अब कोई दम है। बेटा भी कुछ नहीं बोलता जी। कुछ नही।

मेरी तो बस एक ही ख्वाहिश है बेटा, किसी के भरोसे न रहूँ। मेरी अपनी एक झोपड़ी हो जिसमें मेरी आखिरी साँस निकले। भाई ये न कहें—बीजी मेरे सिर पड़ गए। दार जी चल गए। अकेले दम पर बेटे बेटियां का पढ़ाया लिखाया शादियाँ की घर बसाया बदन रत्ती रत्ती सोना उतार कर लगा दिया।—जितना धन सब कुछ किया अब बदन के कपड़ों के अलावा कुछ भी नहीं है बेटा। अब कहाँ जाऊं। बस एक झोपड़ी हो जिसमें पड़ी पड़ी इज्जत से चली जाऊँ उनकी आँखें छलछला आती हैं।

मगर उस दिन उसे बीजी से कोफ्त हुई। उस दिन वह बीजी के साथ सिनेमा गई हुई थी। इंटरवल में जब रोशनी हुई तो वह सन्न रह गई। उस के ठीक सामने की सीट पर सरदार दलजीत सिंह बैठे थे उसी लड़की के कंधे में बाँह रखे। रोशनी होते ही उन्होंने हाथ हटाया और पलटकर देखा। बड़ी सहजता से उठ कर उन लोगों के पास आए। उसे हल्के से नमस्ते किया और बीजी से बातें करने लगे। लड़की ने भी पलटकर देखा और कहीं से जोरदार नमस्ते ठोका। बीजी भी बड़ी मुहब्बत से मुस्कुराई।

वह बेवकूफों सी देखती ही रह गई। ये बीजी कैसी औरत है।

आखिर उससे रहा नहीं गया था। उस दिन बीजी नहीं थी घर पर। वह बहुत देर तक बैठी रही थी उद्विग्न सी। भाभी बड़ी लगन से सरदार जी के कपड़ों पर प्रेस कर रही थी साथ ही उससे बातें भी करती जा रही थी

—आज आपका मूड कुछ ठीक नही दिखता दीदी। कोई बात तो नही हो गई।

भाभी, ये बीजी बहुत अजीब औरत हैं।

भाभी परेशान सी उसका मुह देखने लगी।

दलजीत भाई साहब भी अजीब आदमी हे भाभी, मुझे तो कुछ समझ मे नहीं आ रहा है।

क्यो क्या हुआ दीदी उनकी आवाज मे कुछ डर सा था।

उसकी जबान लडखडा गई। मगर उसने बता दिया।

ये मजू के साथ मिनेमा जाते है भाभी के चेहरे म गहरी व्यथा और दबे हुए क्रोध के मिल जुले भाव थे।

हाँ भाभी मैंने देखा, बीजी ने भी देखा, मगर वे कुछ भी नहीं बोली।

वे क्यो, बोलेंगी दीदी—उ होने आवश मे कहा—उन्ह क्या फक पडता है वे अपने बेटे को क्यो नाराज करेंगी

भाभी स्वय को सँभाल नही पा रही थी। उनका चेहरा लाल होता जा रहा था आँखें छलछला आई थी अभिव्यक्ति क लिए शब्द नही मिल पा रहे थ उ ह। सुमिता बहुद डर गई थी वह नही जानती थी—भाभी एकदम बालू की दीवार पर खडी हैं।

मुझे बहुत लोगो न बताया था दीदी य मजू क साथ देखे जाते हैं। मगर य मुझसे झूठ बोल देते थे कहते ये मजू की नौकरी लगानी है गरीब लडकी है। मरी बहन की तरह है—फलाना साहब से मिलाने ले गया था मैं मान लेती थी—मगर—मगर मैं इस घर म नहीं रहूँगी अब क्या मैं इस घर की नौकरानी हूँ नौकरानी से भी गई बीती वो एश करें मैं जूते साफ करूँ उनके बच्चा के पोतडे धोऊँ मुझे कब कब ले जाते है सिनमा

दोनो हाथा स मुह ढाँप कर भाभी फफक पडी थी बिल्कुल बसहारा बच्चे की तरह।

नहीं, मगर भाभी कही नही गयी। उनके घर स लडाई झगडे जसी भी

कोई आवाज नही आई। सारी रात वह बेचैन रही। दूसरे दिन भी नही गई। सुबह धडकते दिल से उसने अपने फ्लैट की खिडकी से झाका—भाभी वैसे ही पुरानी घुरानी अधगीली सलवार कमीज पहने, सलवार के पायचे ऊपर चढ़ाए, चुपचाप धुले हुए कपडे सुखा रही थी।

सारे कामधाम वसे ही चल रहे थ – अटूट खामोशी से। सरदार जी अभी भी बाहर गुलछर्रे उडाते थे। हाँ भाभी और भी घर घुस्सी हो गई थी। गुडडू को लिए अकेले सुनसान घर मे लेटी रहती। लगता था अब उसके प्रति भी कुछ कठोर सी हो गई थी। कभी वह बात करती तो अजीब तरीके से पूछ बैठती—आपका अपाइंटमेंट आडर अभी तक नही आया इटरव्यू दिए तो इतने दिन हो गए क्या कोई दूसरी नौकरी के लिए कोशिश कर रही है।

उसे भाभी से डर लगने लगा था।



अब वह सारी दोपहर घर ही म बैठी रहती। पोस्टमन की राह देखते कम से कम सौ जगह दरख्वास्तें भेजी थी। दस प द्रह इटरव्यू दिए थ। कही से तो कुछ आ जाय।

ऐसे म कभी कभी तारु आ जाता था। तारु नीचे फ्लैट वाले शिवशकर बैनर्जी का छोटा भाई था। तारु और उसके भाई अपनी भाभी को बोउदी कहते थे। वह भी उ हे बोउदी कहती थी। बोउदी और शिवशकर दादा की जोडी खूब जमती थी—दोनो गोरे चिट्टे बेहद खूबसूरत। बोउदी बताती थी कि पहले दादा स्कूल मे साइस टीचर थे। गुजारा नही चलता था तब घर का। सत्तर रुपया मकान भाडा था। मकान म मक्खी मच्छड छिपकली, मेढक और सारे सभी का आना जाना चलता था। नौकर था नही।

वे चीथडे लटकाये, मुह धुलाये सारा दिन खटती थी तब भी दादा चिड चिडाते थे। तिस पर तीनो देवर भी पढने-लिखने मे ढोल थे। स्कूल म छुट्टियाँ बहुत रहती हैं दादा सारे दिन घर म बैठे रहते हर किसी पर बिगडते रहते बोउदी पर भाइयो पर। तब वे सोचती थी हे भगवान, ये कही बाहर क्यों नही जाते।

सुनकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ था क्योकि अब उनके घर का वातावरण कुछ और ही था। अब वे सात सौ किराया देते थे। दादा ने घर बड़े साध से सजाया था—परदे कालीन, फर्नीचर। सजावट के ढेरो खूबसूरत सामान, पता नही कहाँ कहाँ से चुन चुनकर लाये थे दादा। मगर वे घर मे रह ही कहा पाते थे। वे दवाइयो की एक बडी कम्पनी मे सेल्स एक्सक्यूटिव हो गये थे। महीने मे मुश्किल से पाच सात दिन घर मे रहते। इन पाँच सात दिनो मे बैनर्जी परिवार मे जैसे बहार आई होती। घर मे कोने कोने से दादा की बुलन्द और खश गवार आवाज गूजती रहती। इन दिनो वे बौउदी को किचन से भगा देते। खुद खाना बनाते—सामिष निरामिष। आस पास के सारे पडोसियो को खाने पर बुलाते—देखिये जुनेजा साहब, मेरे हाथो का कमाल—अरे सुमिता को कुछ बनाना आता है। उसे तो मैं ट्रेनिंग दूगा।

लेकिन फिर किसी रात आधी रात दादा सूटकेस लिये पानी मे भीगते या ठड मे ठिठुरते निकल पडते। बौउदी दरवाजे मे खडी खडी देखती रहती। फिर अपने सूने कमरे मे लौट जाती। ढेर सारे सूने सूने दिनो की शुरुआत हो जाती।

बाकी दोनो देवर तो काम पर लग चुके थे। यही एक तारु बेकार था। पढा ही नही। सुमिता हजार कहती—तारु तू बी० ए० मे बैठ जा मैं तुझे पढा दूगी—। मगर तारु का कहना था—मैं अब नही पढूगा आपने ही पढ कर कौन सा तीर मार लिया। कभी गुस्से मे कहता—आपका क्या है आपकी शादी हो जायेगी किसी पैसे वाले से। आप ये सारे दुख भूल जाइयेगा। तारु को कौन पैसा वाला जमाई बनायेगा, बोलिए।

उसकी दरख्वास्तें लेकर तारु ही जगह जगह जाया करता था कभी किसी कालेज मे कभी किसी स्कूल मे कभी किसी आफिस मे कभी किसी बैंक मे। इन्टरव्यू की तारीख कब है क्या हालत है कैसा भेडिया धसान करोबार चल रहा है—ये सारी खबरें तारु ही लाया करता था। वैसे तारु की नौकरी लगने के फिर भी काफी आसार थे क्योकि तारु ने शार्टहैंड,

टाईपिंग कर रखी थी वह कहता था कि आप भी ऐसा ही कोई कोर्स कर लीजिए। मगर अब वह सिर्फ नोकरी चाहती थी, कोर्स करने का धैर्य नहीं रह गया था उसमें। कभी वे किसी लघु उद्योग की योजना बनाते, तो कभी किसी छोटे मोटे व्यवसाय की। पर और उचित दिशा निर्देशन के अभाव में सारी योजनायें जबानी ही रह जाती। न उसका दिमाग इस लायक था, न तारु का। दोनों ही भावुक और संवेदनशील थे। दोनों ही की किस्मत में अंतहीन विवशता और घुटन थी। मगर निरन्तर निराशा और उदासी में सुमित्रा का चेहरा निकल आया था जबकि तारु के जबड़े और भी कस जा रहे थे। किसी पर भी फट प्रहार कर देता। तारु की शक्ति का एहसास भी उसे उस दिन हुआ था।

उस दिन वह मोकामा गई थी—इन्टरव्यू देने। सौ से अधिक उम्मीदवार। सुबह दस बजे का इन्टरव्यू रात दस बजे तक नहीं निपट पाया। सभी लड़कियों को लेने कोई न कोई आ गये थे। उसे लेने कौन आता। किसी को पता भी नहीं था कि वह इन्टरव्यू देने गई थी। इन्टरव्यू देने तो वह जाती ही रहती थी। कभी तारु को बता देती थी, कभी नहीं बताती थी। बाकी लोगों की रुचि सिर्फ इसमें थी कि उसे नौकरी लगी या नहीं। उस दिन रात दस बज गये। बस सर्विस भी बन्द। किसी तरह स्कूटर रिक्शा लेकर घर पहुंची। चाची का पारा सातवें आसमान पर। चाचा अलग मुंह फुलाए। चाची लगी बकने नौकरी चाकरी तो इन्हें मिलती है नहीं, आवारागर्दी की छूट जरूर मिल गई है। कुछ बाप ने कमाल दिखाया है कुछ बेटी दिखा रही है

चाची की चिल्लाहट ने आग में घी का काम किया एक तो ऐसे ही भूखी प्यासी पस्त हिम्मत, दूसरे पिता के दुर्भाग्य विद्रूप पर प्रहार। वह सचमुच पागल हो गई दनादन दीवार पर सिर पटकने लगी। खुद को गालियाँ बकने लगी हरामजादी, कमीनी—दूसरों के टुकड़ों पर पेट भर रही है खुद गालियाँ खा रही है मां बाप को खिला रही है मरा भी नहीं जाता तुझसे—बेशरम नकटी

चाचा तेश म उठे और उसी के केश पकडकर लगे चटापट बरसाने— तमाशा मचा रही है आधी रात को—मरना है तो जा कर मर इस घर मे तमाशा नही चलेगा—दो बात सह नही सकती बेहया

वह विक्षिप्त सी हो चुकी थी। अपने जीवन से अपार घृणा हो रही थी उसे बस चलता तो अपने आपको वही खाक कर देती सारा मुहल्ला इस दृश्य को देख सुन रहा था सरदार दलजीतसिंह बनर्जी दादा—बोउदी भाभी पीछे वाले माथुर साहब—

और तब उन सबके बीच से होकर आया था तारु। चाचा को उसने चुन चुन कर खरी खरी सुनाई थी बुलद आवाज मे। चाची ने कुछ अनाप शनाप बकना चाहा, तो उन्हे भी चुप करा दिया उसने। आप चुप रहिए आपस मैं बात नही करना चाहता। जिस तरह की गालिया आप मुह से निकालती हैं—कोई शरीफ औरत मुह स नही निकाल सकती।

यह सब भारी पडा था उस। बेहद भारी। जीवन के प्रति सारी घृणा जैसे तारु के शब्द म घुल घुल गई थी। जिस दीवाल पर सिर पटक रही थी उसी स लिपटकर पडी थी कोई पहली बार उसके लिए इतना बोला था।

□

रोज की तरह उस दिन भी सुबह उसने दरवाजा खोला तो वह अवाक रह गई। यह स्वप्न था या सत्य। सामने एक अत्यन्त खूबसूरत कददावर युवक खडा था तीखे नाक नक्श, चमकीले काले केश दमकता गोरा रग गुलाबी शर्ट और काली पट म, किसी राजकुमार की तरह। उसी की ओर निहार रहा था परम विस्मित नेत्रो स।

अगले ही क्षण वह पलटकर भीतर भागी। कौन होगा—उसका हृदय तेजी स धडक रहा था।

अभी वह स्वय को सभाल भी नही पाई थी कि अकिल की आवाजें आने लगीं सुमिता कहाँ रह गई, चलो बेटे

गुनगुनाते हुए अंकिल सीढ़ियां उतरने लगे। रोमांचित सी सिर झुकाये वह अंकिल के पीछे पीछे चल दी। युवक अभी भी वहीं का वहीं खड़ा उसे देख रहा था।

आज अंकिल बेहद खुश थे। रास्ते भर बताते रहे कि आज सुबह चार बजे जीत आया है। कितने दिन बाद आया है। वे चाहते हैं कि जीत की शादी कर दें। इस बार तो कर ही देंगे। जमाना खराब है लड़कियां बहुत चालू हो गयी है। अच्छे लड़के देखते ही फांस लेती हैं। जीत मेजर है। फिर भी बहुत आज्ञाकारी है। ग्यारह देशों में रह चुका है। फिर भी पूरा हिन्दुस्तानी है। पिछले दिनों मऊ में था। एक सज्जन उसके पास शादी का प्रस्ताव लेकर गये तो साफ बोल दिया कि मेरे पिता से बातें कीजिए। आजकल ऐसे लड़के कहां मिलते हैं।

तुम रहोगी न अपने भाई की शादी में—अंकिल उसे गौर से देखने लगते हैं।

भाई की शादी मे—वह अकबक सी अंकिल का मुह देखने लगती है।

हां जीत की ही बात कर रहा हूं। उसके कोई बहन तो रहेगी नहीं शादी में। एक है भी, सो अमेरिका में डाक्टर है। वह वहां आ पायगी। बहन की रस्म तो तुम ही करोगी।

वह कुछ नहीं कहती आंखें धुंधला सी जाती हैं—चुपचाप चलती रहती है।

टप टप टप उसने पलट कर देखा—मेजर स्पोर्ट्स सूट में दौड़ते हुए आ रहे थे। उसके पलटते ही दृष्टि टकरा गई।

वह तुरंत पलट कर फिर सामने देखने लगी। मेजर दूर निकल चुके थे।

अंकिल बताने लगे रोज सुबह दौड़ लगाता है। कुछ खाता नहीं। कहता कहता है—वजन बढ़ गया है।

वजन बढ़ गया है वह हंसने लगती है आपके बेटे को वहम हो गया है अंकिल। मुझे तो बल्कि कुछ दुबले ही नजर आ रहे हैं

अकिल अपने बेटे से परम अभिभूत हैं। उसे भी आज अकिल की बातें सुनना बहुत अच्छा लग रहा है।

लौटने पर देखा—मेजर सामने ही बैठे थे आराम कुर्सी पर पसरे। पसीने पसीने हो रहे थे। मगर उस दरवाज़े हो दृष्टि टप से उसी पर टिका दी।

वह सिहर कर भीतर भाग गई। अकिल आवाजें ही देते रहे।

आज की खाली दोपहर भी उसे बेहद भरी भरी लग रही थी। आज बहुत दिनों बाद उसने रेडियो खोला। गीत के बोलों के साथ वह भी धीमे धीमे गुनगुनाने लगी थी।

ठक ठक किसी के मजबूत हाथों ने दरवाजा ठकठकाया—उसे लगा शायद तार हो। कोई खबर लाया हो। मगर दरवाजा खोलते ही सामने मेजर खड़ा था—उसने अनुपम सौंदर्य के साथ अपनी चुम्बकीय दृष्टि से देखते हुआ।

ओह—उसकी पलकें एकदम झुक गई।

यह आपकी डाक है—मेजर ने खुरदुरी मर्दानी आवाज में कहा—वैसे ही पोर पोर में चुभती हुई भेदक दृष्टि।

हाथ में लिफाफा लिए वह एकदम पलट गई। गाल सिंदूरी हो उठे—हाथ कहीं हाथ ही पकड़ लेता तो।

एक लिफाफे में उसका नियुक्ति पत्र था वही पुरानी वाली गलीच नौकरी। वह अकेली और उस गंदे आफिस में ढेर सारे राल टपकाते मर्द। हर पल की असुरक्षा। तिस पर पराया शहर। अकेला कमरा। आफिस, घर, हर जगह अपने को बचाते बचाते ही अधमरी हो रही थी।

उसने नियुक्ति पत्र एक तरफ फेंक दिया।



गुदगुदाओं के हुजूम ने अनायास ही उसे घेर लिया था। मन प्राण आत्मा सभी में ये गुदगुदें समा गई थीं। वह महकी महकी फिरती। अब अकिल उन्हें सुबह घूमने जाने के लिए आवाजें देते, तो उसे तनिक भी बुरा न लगता बल्कि वह मीठी आवाज में कहती—आई अकिल।

अखिल के साथ टहलते हुए उसके कान लगे रहते। सपनों का राजकुमार हवा के घोड़े पर सवार होकर निकल जाता टप—टप—टप। वह सिहर जाता एक पथरी दृष्टि उसके समूचे युवा शरीर पर फिसलती हुई निकल गई है।

सारे रास्ते जैसे कोई मन का मीठा मीठा तराना बज रहा हो वह सुनती रहती। अखिल की अनवरत बातें जीत शादी नहीं करना चाहता। उसे कोई लड़की ही पसन्द नहीं आ रही।

शाम की चाय में शामिल होते समय तो उसके पाँव मन मन भारी हुए जाते। मगर जाना भी जरूरी रहता क्योंकि आजकल चाचा चाची भी शामिल होने लगे थे। इधर चाची की तबियत खराब रहती थी इसलिए वे दोनों आजकल शाम को कहीं जाते थे। चाय सुमिता ही तैयार करती। उन मौकों पर मेजर अधिकतर चाचा से ही बातें करते रहते—जमीन कहाँ किस भाव में मिलती है। पापा मम्मी के लिए मकान बनवाना है। रिटायरमेंट के बाद ये लोग कहाँ रहेंगे।

आँटी अधिकतर चाची से बतियाती और अखिल अधिकतर उसका सिर खाते। वह भी तुर्की बतुर्की जवाब देती रहती। बीच बीच में जब भी निगाह उठती तो भीतर ही भीतर बौर जाती—हीरों की तरह जगमगाती दो आँखें उसी पर टिकी हुई हैं। साधिकार।

शाम और सुबह, दोनों ही सतरंगी हो उठे थे तो दोपहर भी पीछे न रही। तीखी धूप वाली बासंती दोपहर। चारों ओर जैसे अदृश्य सुनहला जाल फैला हो। घायल हिरनी सी फँस गई हो वह। चाचा आफिस में होते, चाची स्कूल में अखिल अपने आफिस में और आँटी अपने बेड रूम में। सूने घर में किसी राजकुमारी की तरह फिरती हुई वह धीमे सुरों में कोई प्यारा सा गीत गुनगुनाती रहती और सामने बराण्डे में मेजर बैठा रहता किताब हाथ में लिए जैसे बेचारा बहुत पढ़ रहा हो।

दोपहर को डाकिया आता। वह खिड़की से ही देख लेती। दम साध लेती। ऊपर के दोनों फ्लैट जुड़े होने के कारण डाकिया दोनों फ्लैटों के किसी

भी व्यक्ति को चिट्ठियाँ पकड़ा देता था। और अगले ही पल ठक ठक दरवाजा बज उठता। वह घड़ी आ जाती। आँखें रतनारी हुई जातीं। दिल धड़क उठता। इस बार वह जरूर आँखों मे आँखें डालकर देखेगी। आखिर यह क्यों इतने अधिकार से देखता है मुझे। मुझसे उसे क्या देना लेना है। मगर दरवाजा खोलते ही मानो साक्षात कामदेव मुस्कुरा उठते। नदन और भी झुक जाती। एक गोरा मर्दाना हाथ कुछ चिट्ठियाँ बढ़ा देता। अगले ही पल दरवाजा बंद हो जाता।

वह एक पल आने वाले सारे पलों पर छाया रहता।



तुम्हारा अपाइंटमेंट लेटर अभी तक नहीं आया उस दिन चाचा सुबह से ही चिंतित हो रहे थे। आज तीन महीने हो रहे हैं। अब तक आफिस का काम तो नहीं रुका होगा।

वह मन ही मन मनाती रही कि चाचा यह बात भूल जाय।

मगर चाचा शाम की चाय पर फिर वही चर्चा छेड़ बैठे थे। कभी अखिल से कभी मेजर से देखिये न पिछली साल इसने कुमार इंडस्ट्रीज में काम किया है स्केल भी अच्छी थी—टेम्परेरी अपाइंटमेंट था। वहाँ था अगले साल फिर ले लेंगे। तारीफ भी की थी इसकी। सिंसियर है। परिश्रमी है। मगर दिखता है इस साल नहीं लिया। किसी और को ले लिया होगा।

सभी लोग उसी की ओर देखने लगे। उसने अपराधियों सा सिर झुका लिया।

इसको यहीं कहीं लगा दीजिये भाई साहब अखिल ने उसके प्रति सदय होकर कहा—दुनिया बड़ी खराब है—बेचारी अकेली लड़की कहाँ कहाँ जूझेगी—फिर यह इतनी सीधी है।

वह चुपचाप नजरें झुकाये सबको चाय के प्याले बढ़ाती रही थी काले काले बालों से भरा एक गोरा मर्दाना हाथ भी आगे बढ़ा—आँखों में पानी तर आया।

अरे पता नहीं क्या नसीब लेकर आई है न इसका कहीं शादी लगती न नौकरी लगती। ये बेचारे कोशिश कर करके हार गये—चाची के स्वर की कड़ुवाहट स्पष्ट उभर आई थी। व खोल खोल कर बताती रहीं कि कैसे उसके पिता विभागीय लड़ाइयों म उलझकर पागल हो गये—कैसे इसकी माँ सिलाई करके छोटे छोटे बच्चे पाल रही है। कैसे इसके सिर मढ दिया लड़की को। कह दिया जूठन हो खा लेगी आपकी। अब बहन जी, हमने तो बेटी की तरह पाला है, मगर फिर भी हम पराये हैं। अभी साल भर नौकरी की। एक पैसा हम नहीं मालूम जी। भेजी होगी अपने माँ बाप को। दरद तो उन्हीं के लिये उठना है न। कहती है, अच्छी इलाज हो तो पापा ठीक हो जायेंगे। इतने बड़े साईंटिस्ट थे—फलाना। अब बताईये जी, बेवकूफी की बातें हैं या नहीं। अब बुढापे म भला वे ठीक होंगे। दिमाग तो बहन जी, उनका पहले ही कुछ सनकी था अपने ही बॉस पर मुकदमा चला दिये थे जी। सुप्रीम कोर्ट तक लड़ते रहे। आखिर म खुद तो पागल हो गये। लाडली भाई के गले मढ दी।

आगे सुना नहीं गया। आँखें डबडबा आई है। वह एकदम उठकर भीतर चली गई। सीधे पलंग पर गिर कर फूट पड़ी।

मी फिलिंग आँटी पश्चाताप के स्वर मे बोली।

फील करने के अलावा य और क्या करती है चाची ने तल्खी स कहा।

वह मुह म आँचल ठूस कर हिलक हिलक कर रोने लगी थी—माँ पापा, तुम लोगो ने मुझे पैदा ही क्यो किया—दुनिया म लाते खाने के लिये

पीछे पीछे अंकिल चाय की प्याली लिये चले आ रहे थे माई चाइल्ड, माई डार्लिंग अपनी चाय तो पी लो।

उसे बेतहाशा रोते देखकर अंकिल जसे एकदम घबरा गये। चाय की प्याली वहीं मेज पर रखकर उसे एकदम बाहों म भरने लगे माई चाइल्ड, डोंट क्राई आय विल हेल्प यू

अंकिल यहाँ से चले जाइये आप वह एकदम उठकर खड़ी हो गई मुझे अकेले पड़े रहने दीजिये।

की प्याली के लिए आगे बढ़ा था—जो उसे जिन्दगियाँ देता था जिसने उसे उसका नियुक्ति पत्र भी थमाया था मिलने के पहले दिन ही।

हाँ—अब उसे चले ही जाना चाहिये। खिड़की से जो देखा यह सारा माहौल उसका अपना था बेहद अपना। मगर उसे रोकने वाला यहाँ कोई नही था।

स्वय को सभाल कर वह बाहर आई। चाचा के पास जाकर खड़ी हो गई। चाचा ने देखा—क्या बात है ?

उससे बोला नही जा रहा था। आवाज फँस रही थी चाचा जी, मैं आपको बता नही पाई थी। मेरा अपाइन्टमेंट लेटर आ गया था मैं मैं अभी की गाडी से निकल जाऊँ तो कल ड्यूटी ज्वाइन कर लूगी। कल आखिरी तारीख है।

सब उसकी ओर देखने लगे।

मगर बेटा, तूने पहले नही बताया अब

यह है ही एसी घु नी चाची गुस्से से बोली अब अभी मेरा डाक्टर से अपाइ टमेंट है और अब इन्ह पहुँचाने जायें, यही न

नही चाची जी मै खुद ही चली जाऊँगी पहले भी तो गई हूँ।

अरे नही भाई साहब, आप भाभी जी को लेकर जाइये डाक्टर साहब के पास मैं अभी गाडी से इसे स्टेशन छोड आता हू क्या बेटा ठीक है न और अंकिल ने फिर उसके कंधे पर अपने पजे रख दिये माई चाइल्ड आई विल मिस यू वेरी मच।

उसने रुक्षता से हाथ हटा दिया मैं चली जाऊँगी आप फिक्र न करें।

लीव हर आटी ने कुछ सख्ती से कहा और उसकी ओर देखकर अनुरोध पूर्वक बोली एक मिनट रुको न।

डोंगे मे रखा हुआ रसगुल्ला निकालकर आटी ने उसके मुह मे डाल दिया आज जीत की शादी तय हो गई है, जस्टिस ग्रेवाल की लडकी से

जस्टिस ग्रेवाल की लडकी वीणा ग्रेवाल झीनी लाल शिफान की साडी मे चमचमाता गोरा बदन—सेट किये हुये केश विन्यास—का वें टी लहजा,

डाक्टर, गायकोनोलाजी स्पेशलिस्ट, ग्लेमर से भरपूर— बहुत ऊँचा हाथ मारा है।

उसने दफ्टी उठायी। भरपूर दृष्टि से मेजर को देखा। तीखे से मुस्कुराई, बोली—मुबारक हो।

मेजर की दृष्टि एकदम मुड़ गई। वह थैंक्यू भी नहीं कह सका।

सहसा ही उसे लगा—उन चमकती नजरों की मारी आब ही चली गई है।

फिजाओं में चारों ओर छा जाने वाला मेजर का वह प्रभावशाली चुम्बकीय व्यक्तित्व पता नहीं कहाँ खो गया था। कुर्सी में सिर झुकायें, सिमटा सा बैठा वह दयनीय सा दिख रहा था। उसे मेजर पर बड़ी दया आई।

अच्छा तो अब मैं चलूं बड़ी सहजता से उसने सामने बिखर आई लटों को समेटा, आटी ओर मेजर की ओर देखा, बड़ी मुहब्बत से मुस्कुराई, मानो आशीर्वाद दे रही हो, झुककर चाचा, चाची के पर छुयें, और नीचे उतर गई।

रिक्शा चल पड़ा था। सरदारनी भाभी और बोउदी कुछ देर फाटक पर खड़ी-खड़ी अंधेरे में उसी ओर देखती रही फिर धीरे धीरे सिर झुकाये भीतर चली गई।



पारिजात प्रकाशन के गौरवशाली प्रकाशन

कामता प्रसाद सिंह 'काम' लिखित

कामता प्रयावली	8 00
हृदय और मस्तिष्क	5 00
पुरानी दुनिया	4 00
घर, गांव और देहात	5 00
आसपास की दुनिया	3 00
सुनहरी सीख	3 00
मैं छोटा नागपुर मे हूँ	10 00

शकर दयाल सिंह का साहित्य

कितना क्या अनकहा	कहानी सग्रह	20 00
आर पार की मजिलें	,,	12 00
समय स दभ और गाधी	विचा रोत्तेजक	10 00
एक दिन अपना भी	वयक्तिक निब ध	25 00
समय असमय	,,	15 00
कुछ बातें कुछ लोग	सस्मरण	22 00
गाधी क देश से लेनिन क देश मे	, यात्रा	10 00
कहीं सुवह कहीं शाम	,,	15 00
कुछ ख्याला मे कुछ ख्वाबों मे	भावात्मक	10 00
इमर्जें सी क्या सच, क्या झूठ	राजनीतिक	20 00
सात तारो का उडनखटोला	सम्पादित	12 00
हजारी प्रसाद द्विवेदी स्मति धरोहर	,,	20 00
प्रेमच द स्मति धरोहर	,,	10 00
डा० कर्णसिह एक सौम्य व्यक्तित्व	,,	100 00

हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों के
एकमात्र
प्रकाशक/विक्रेता



पारिजात प्रकाशन
डाक बँगला रोड, पटना-१